गंगालहरी

(पद्माकर)



सुधाकर पांडेय

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

पाठोपयोगी पुस्तकमाला–१२

गंगालहरी

(पद्माकरकृत)

सुधाकर पांडेय

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक : नागरीप्रचारिणी सभा, काशी
मुद्रक : शंभुनाथ वाजपेयी, नागरी मुद्रण, काशी
द्वितीय संस्करण : ११०० प्रतियाँ
संवत् २०४० वि० : मूल्य ६-००

परिचय

"गंग गमेप्पिणु जो मुअइ जो सिवतित्थ गमेप्पि ।
कीलदि तिदसावास गउ सो जमलोउ जिणेप्पि ॥
वासु महारिसि एउ भणइ जइ सुइसत्थु पमाणु ।
मायहं चलण नवन्ताहं दिवि गंगा ण्हाणु ।"[1]

पुरानी हिंदी के उक्त दोहे इस बात के प्रमाण हैं कि हिंदी काव्यधारा में उसके आरंभ काल से ही गंगा संबंधी सूक्तियों के बुल्ले उठने लगे थे। ये बुल्ले उत्तरोत्तर बढ़ते गये और अंत में जहाँ हिंदी कविता में कृष्ण-काव्य-धारा, रामकाव्य धारा, प्रेममार्गी धारा, ज्ञानमार्गी धारा आदि अनेक धाराएं प्रवाहित हुईं, वहीं एक गंगा-काव्य-धारा भी प्रवाहित हुई। यह धारा गंगा की वाली गंगा की धारा के समान ही परम सूक्ष्म, अत्यंत निर्मल, अति स्निग्ध, सहज शीतल और स्वभावतः शांतिप्रदायिनी सिद्ध हुई।

हिंदी कविता की उक्त गंगा धारा अतल को तोड़कर निकलनेवाली किसी भी नदी के समान प्रारंभ में केवल बुदबुदमयी थी। वह बुल्लों के रूप में कभी कभी, जहाँ तहाँ दिखाई पड़ जाती थी। यही कारण है जो हिंदी कविता के जन्मकाल में हमें कहीं हेमचंद सूरि के संग्रह में गंगा संबंधी कुछ फुटकल दोहे मिल जाते हैं तो कभी विद्यापति की पदावली में एकाध पद। इस प्रकार ये बुल्ले हमें कभी पश्चिमी भारत के गुजरात प्रदेश में दिखाई पड़े तो कभी पूर्वी भारत के मिथिला प्रदेश की हरी भरी अमराइयोंवाली धरती से भी लोगों ने उसे फूटते देखा। मिथिलावाला बुल्ला बड़ा ही मुखर था, इसलिये लोगों ने उसे सुना भी और इस प्रकार सुना कि उसकी ध्वनि आज भी कानों में गूँजती है। सुनिए:—

---

१ जो शिवतीर्थ (काशी) में जाकर गंगास्नान कर मरते हैं वे यमलोक को भी जीत कर खेलते कूदते हुए त्रिदशावास (स्वर्ग) में जाते हैं। महर्षि व्यास यह कहते हैं कि यदि सरस्वती (श्रुति) प्रमाण है तो माता की चरणवंदना करनेवाले को नित्य गंगास्नान का फल प्राप्त होता है।

"बड़ सुख सार पाओोल तुअ तीरे।
छोड़इत निकट नयन बह नीरे॥
कर जोरि बिनमओों विमल तरंगे।
पुन दरसन होए पुनमति गंगे॥
एक अपराध छेमब मोर जानी।
परसल माय पाय तुअ पानी॥
कि करब जप-तप जोग धेआने।
जनम कृतारथ एकहि सनाने॥
भनइ विद्यापति समदओों तोहीं।
अन्त काल जनु बिसरह मोहीं॥"

और जनश्रुति साक्षी है कि गंगा ने भी विद्यापति को उनके अंतकाल में नहीं भुलाया।

बुद्‌बुदावस्था के बाद उक्त गंगा धारा लघु लघु तरंगोंवाली स्थिति में आई। इसकी यह तरंगावस्था समस्त भक्तिकाल में अंतःसलिला की भाँति प्रवाहित होती रही। अपने व्यक्तिगत विश्वास के अनुसार विभिन्न धार्मिक साधनाएँ करते हुए भी हिंदी कवि का मानस जाह्नवीजल के दर्शन मात्र से तरंगायित होता रहा। अपने विशिष्ट इष्ट के ध्यान में रत रहते हुए भी भक्तिकाल का कवि भागीरथी को न भूला। जहाँ जरा सा भी अवसर मिला, उसने अपनी भागीरथीभक्ति की खुलकर अभिव्यक्ति कर दी। गोस्वामी तुलसीदास जी की विनयपत्रिका के गंगा विषयक १७, १८, १९ और २० संख्यक पद इस संदर्भ में उद्‌धृत किए जा सकते हैं।

इसी काल के दूसरे प्रमुख कवि अब्दुर्रहीम खानखाना हैं जिनकी गंगाभक्ति का प्रमाण उनके एकाध दोहे और उससे भी अधिक प्रचलित किंवदंतियों में मिलता है। उनका गंगा विषयक यह दोहा तो बहुत ही प्रसिद्ध है :—

"अच्युत-चरण-तरंगिणी सिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनाओ सुरसरी कीजिय इंदव भाल॥"

उनका उक्त दोहा उनकी ही एक संस्कृत उक्ति का अनुवाद कहा जाता है :—

"अच्युतचरणतरंगिणी शिवसिरमौलिमालतीमाले।
मम तनुवितरणसमये हरता देया नमे हरिता॥"

और उक्त श्लोक भी उनके संस्कृत गंगाष्टक का प्रथम छंद कहा जाता है। कहा जाता है कि रहीम ने संस्कृत में गंगाष्टक की रचना की थी जिसका एक सशक्त छंद यह भी है :--

"त्वत्तटरचितकुटीकः कोटि-नटी-लम्पटोऽपि पटुरेव ।
पातक-पोतक-डाकिनि मंदाकिनि हे नमस्तुभ्यं ।।"[1]

यदि सचमुच उक्त रचना रहीम की ही है तो इस संदेह के लिये काफी गुंजाइश है कि 'पातक-पोतक-डाकिनि मंदाकिनि' वाक्यांश के लिये गोस्वामी तुलसीदास जी रहीम के ऋणी हैं जिसका उपयोग उन्होंने निम्नलिखित अर्धाली में किया है :—

'सुरसरि धार नाउँ मन्दाकिनि ।
जो सब पातक-पोतक-डाकिनि ।।'

तुलसी और रहीम के बाद तीसरे भक्त कवि रसखान हैं जो राधा माधव के गुणगायक थे और प्रेमदेव की छवि पर सर्वस्व लुटाकर 'मियाँ रसखान' बने थे। फिर भी गंगा ने उनके हृदय को तरंगित किया। क्षण भर के लिये 'कुंज कुटी तट राधा पाय पलोटत' ब्रह्म की ओर से आँखे मोड़कर वे ब्रह्मद्रव की ओर आकृष्ट होने के लिये विवश हुए थे और अपनी विवशता का प्रमाण निम्नलिखित सवैया के रूप में सदा के लिये छोड़ गए--

'वैद की औषधि खाय नहीं न करै कछु संजम री सुन मोसें ।
तेरोई पानी पियैं 'रसखानि' सजीवन जानि लहै सुख तोसें ।
एरी सुधामयी भागीरथी सब पथ्य कुपथ्य बनै तुव पोसें ।
आक धतूर चबात फिरैं बिख खात फिरैं सिव तेरे भरोसे ।।'

उत्तर रीतिकाल में आकर गंगाकाव्य की उक्त धारा तरंगावस्था से भी निकलकर लहरीली स्थिति में पहुँच गई। उसे इस लहरीली स्थिति में लाने का श्रेय पदमाकर को है।

रीतिकाल में श्रृंगार रस के सर्वमान्य आलंबन राधाकृष्ण थे। अतः उनके कारण यदि किसी नदी को संसर्गज मान्यता प्राप्त हो सकती थी तो यमुना को ही। कृष्णकी सारी रसीली लीलाएँ यमुनातट पर ही तो हुई थीं। ऐसी स्थिति में पद्माकर द्वारा गंगालहरी की रचना एक विचित्र बात कही

---

१. यदि करोड़ों वेश्याओं के साथ विलासकुशल लंपट भी तुम्हारे तट पर कुटी बनाकर रहे तो उसके पातक रूपी बच्चों को तुम डाकिनी के समान चबा जाती हो। हे मंदाकिनी तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

जायगी। उनकी गंगालहरी के अनुकरण पर ग्वाल कवि ने यमुनालहरी की रचना की थी परंतु था यह कर्तव्य पदमाकर का ही। फिर भी पदमाकर ने यमुनालहरी न लिखकर गंगालहरी लिखी। इसके स्पष्टतः दो तात्कालिक कारण प्रतीत होते हैं।

'पद्माकर' के जीवनकाल में पंडितराज जगन्नाथ की गंगालहरी बहुत प्रसिद्ध हो चुकी थी। उस गंगालहरी के साथ एक कथा भी जुड़ी हुई थी कि यवनीसंसर्ग के कारण पंडितराज जातिबहिष्कृत थे। कहते हैं, अपनी पवित्रता का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिये ही उन्होंने संस्कृत में गंगालहरी की रचना की थी।

उधर पद्माकर के संबंध में भी कहा जाता है कि किसी स्वर्णकार सुंदरी से अवैध संबंध के पाप से उन्हें कुष्टरोग हो गया था जिससे मुक्ति पाने के लिए उन्होंने कानपुर में गंगातट पर निवास भी किया था और उसी अवसर पर गंगालहरी की रचना भी की थी। पद्माकर को 'गंगालहरी' नाम पंडितराज से ही प्राप्त हुआ था। निस्संदेह इस रचना के मूल में 'पद्माकर' की यही भावना काम कर रही थी कि गंगा पाप-ताप-नाशिनी हैं अतः उनके स्तवन से मेरी व्याधि नष्ट हो जायगी। पंडितराज के समक्ष भी गंगा का यही महत्व था साथ ही, उनके सामने आदिकवि वाल्मीकि से लेकर कालिदास और शंकराचार्य जैसे समर्थ शब्दशिल्पियों की गंगा विषयक सशक्त रचनाओं का बृहद् भांडार भी था। परंतु जैसा कहा जा चुका है, हिंदी में गंगाकाव्य को लहरोंवाली स्थिति में पहुँचाने का श्रेय पद्माकर को ही है। इस काल में हिंदी में गंगा को लेकर एक व्यवस्थित काव्य की ही रचना नहीं हुई, अपितु रीवा के एक पंडित ने संस्कृत में पहली बार गंगा को लेकर एक नाटक की भी रचना की। वह नाटक अप्रकाशित है। यह रचना बहुत ही ललित है जिसका प्रमाण इस एक ही छंद से मिल जाता है—

'ब्रह्माद्याः किल यत्र संस्तुतिपरा दीपौ दिवारात्रिपौ
त्रैलोक्यं कमनीयनाट्यभवनं गंधर्वकाः गायकाः।
देवो दंडधरो विदूषकवरः सभ्याः समस्तर्षयः
प्रोद्यत् सूत्रधरेण वामनपदा गंगा नटी नाट्यते ।।'

गंगाकाव्य की उक्त लहरीली स्थिति के पोषण में काशी के कवियों का योग कुछ कम नहीं रहा है। इस प्रसंग में भारतेंदु हरिश्चंद्र के पिता गिरिधर दास के गंगाशतक की यह रचना द्रष्टव्य है—

'जम की सब त्रास बिनास करी मुख ते निज नाम उचारन में।
सर्व पाप प्रतापहिं दूर परचो तुम आपन आप निहारन में।
अहों गं. अनंग के स्वं करे बहु नेक जलै मुख डारन में।
'गिरिधारनजू' कितने बिरचे गिरिधारन धारन धारन में।।'

स्वयं भारतेंदु ने अपने हरिश्चंद्र नाटक में गंगा का जैसा वर्णन किया है वैसा जोरदार वर्णन वे चंद्रावली नाटिका में यमुना का न कर सके। कोई भी पारखी दोनों वर्णनों को पढ़कर तुरत कह देगा कि जहाँ गंगावर्णन में भारतेंदु के हृदय का उल्लास छलका पड़ रहा है वहीं यमुनावर्णन में कवि रसम्रदायगी सा करता दिखाई पड़ता है।

रीतिकालीन पिछले खेवे के एक समर्थ कवि 'सेवक' काशी में ही रहते थे। दशाश्वमेध घाट के पास उनका मकान था। उन्होंने अपने मकान के दर्वाजें पर खड़िया से लिख रखा था—

'भागीरथी हम दोस भरे पै भरोस यहै कि परोस तिहारे।

वर्तमान काल में गंगाकाव्य की लहरीली स्थिति उस समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई जब 'रतनाकर' ने गंगावतरण काव्य की रचना की। गंगा संबंधी हिंदी कविता में 'पद्माकर' की गंगालहरी और 'रत्नाकर' का गंगावतरण सदैव सर्वोच्च स्थान के अधिकारी रहेंगें।

इसी काल में व्यावसायिक रंगमंचों ने भी गंगा संबंधी नाटकों का अभिनय आरंभ कर दिया था। अहमदाबाद के सूरविजय नाटक समाज ने गंगावतरण नाटक का सन् १९२१ में काशी में बड़ा ही सफल अभिनय प्रस्तुत किया था। पारसी नाटक कंपनियों के प्रसिद्ध नाटककार पंडित नारायणप्रसाद 'बेताब' ने जब प्रास पुंज नामक पुस्तक की रचना की तो इस नियम का उदाहरण प्रस्तुत करने के लिये कि यदि तुक के दोष का पद्य में ही उल्लेख कर दिया जाग तो फिर वह दोष नहीं रह जाता, निम्नलिखित दो पंक्तियाँ लिखी थीं—

'तपोधन तापसों की कुदरती जागीर थी गंगा।
'गुलू के साथ' थी यूं मौजजन भागीरथी गंगा।।'

रीतिकाल में भक्तिकालीन अष्टछाप के भक्त कवियों के उपास्य राधाकृष्ण दरबारी कामकौतुक के क्रीडनक बन गए। सखी संप्रदायवालों ने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम को 'झाऊ को झाड़ियों' में विलास-लीला-रत चित्रित कर दिया रंतु गंगा को लेकर इस प्रकार का मजाक करने का दुस्साहस कोई न कर

सका। संभवतः गंगा के साथ ऐसा मजाक साधारण जनता सहन भी नहीं कर सकती थी क्योंकि गंगा खास उसकी अपनी चीज थी। गंगा वह प्रत्यक्ष देवी थी जिसके 'दरस परस मज्जन अरु पाना' से, उत्तर भारतीय जनता चौखूंट परितृप्ति प्राप्त करती थी। गंगा ने धराधाम में अवतीर्ण होकर उत्तर प्रदेश और बिहार को मरुभूमि बनने से बाल बाल बचा लिया था। भूगोल में रुचि रखनेवाले भली भाँति जानते हैं कि उत्तरप्रदेश और बिहार उसी भौगोलिक रेखा पर स्थित हैं जिसपर विश्व के बड़े बड़े रेगिस्तान हैं, परंतु यह गंगा की ही अमोघ कृपा थी कि 'चरते जहाँ जिराफ हंस उस थल पर आए।' यहाँ यह भी न भूलना चाहिए कि उत्तरप्रदेश और बिहार प्रमुख हिंदीभाषी भारतीय भू खंड हैं। अतः इन प्रदेशों का साधारण जन गंगा की उक्त कृपा को भूल ही नहीं सकता था। विदेशी और विजातीय शासन की छत्रछाया में प्रतिदिन होली और हर रात दीवाली मनानेवाला सामंती समाज कभी कभी अपनी रंगरेलियों की आग में आहुति देने के लिये कृषकों के मुँह का ग्रास छीन लेता था अथवा अपने युद्धोन्माद में जब कभी उसकी हरी भरी लहलहाती खेती को घोड़ों की टाप से रौंदवाकर उसे अन्न से वंचित कर देता था उस समय भी गंगा कम से कम उसकी प्यास तो बुझा ही देती थी। ऐसी स्थिति में यह मान लेना अनुचित न होगा कि साधारण जनता को रीतिकालीन रसीली कविता से पेट की जलन के कारण भले ही रस न मिलता रहा हो, गंगा संबंधी कविताएँ, उसे अवश्य शांति प्रदान करती थीं। उसके हृदय का स्पर्श करती थीं। साधारणतम व्यक्ति गंगाकाव्य में सच्चे रस का आस्वादन करता था। आज भी करता है। तभी तो मुसलमान होते हुए भी 'नई मसजिद' न बनाकर 'नया शिवाला' की रचना करनेवाले और शतद्रु तथा वितस्ता का पानी पीकर जीते हुए भी दजला और फरात की मटियाली लहरों में उभचुभ करनेवाले अल्लामा इकबाल को भी यह कहना ही पड़ा कि--

> ऐ आबरौद गंगा ! वह दिन है याद मुझको
> उतरा तेरे किनारे जब कारवाँ हमारा ॥'

इस तथ्य का अनुभव न करने के कारण कि इस्लाम का बेड़ा गंगा के दहाने में आकर सचमुच किनारा पा गया, मौलाना हाली ने भ्रमवश यह समझ लिया इस्लामी बेड़ा गंगा के दहाने में आकर डूब गया। अतः विपरीत लक्षणों से गंगा का महत्व सकारते हुए मौलाना ने लिखा है कि इस्लाम का जो बेड़ा--

'न ज़ेहूँ में अटका, न सेहूँ में भटका।
वो डूबा दहाने में गंगा के आकर ॥'

विपरीत रूप में ही नहीं, सीधे सीधे भी मौलाना को गंगा का महत्व मंजूर था। तभी नवयुवकों को उद्‍बोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि––

'खेतों में दे लो पानी, यह बह रही है गंगा;
कुछ कर लो नौजवानों ! उठती जवानियाँ हैं ॥'

संक्षेप में, हिंदी में गंगा संबंधी काव्य का जो विवरण प्रस्तुत किया गया है। उससे हिंदी में गंगाकाव्य का महत्व सिद्ध हो जाता है। यह भी बताया जा चुका है कि हिंदी-गंगा-काव्य में 'पद्माकर' की गंगालहरी का स्थान विशिष्ट है। इसी गंगालहरी का यह संस्करण मेरे अनुजकल्प पंडित सुधाकर पांडेय ने प्रस्तुत किया है। यद्यपि पांडेय जी वाणिज्य के अध्यापक हैं, तथापि वे हिंदी साहित्य की सेवा में जिस प्रकार रत रहते हैं उससे कभी कभी मेरे जैसे विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन करनेवाले को लज्जा भी आती है। न आती हो तो आना चाहिए। सुधाकर जी ने इसे प्रस्तुत कर छात्रों का बड़ा उपकार किया है। हिंदी में इधर जिन लोगों ने गंगालहरी पर काम किया हैं उनमें अग्रजकल्प आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र प्रमुख हैं। उन्होंने प्रायः १९ वर्ष पूर्व गंगालहरी का एक सुसंपादित संस्करण श्री रामरत्न पुस्तकालय से प्रकाशित कराया था। हाल ही में उन्होंने अपने 'पद्माकर' ग्रंथ में सभी पाठांतरों के साथ गंगालहरी प्रकाशित करवाई है। गंगालहरी के संबंध में मेरे 'अग्रज' ने यह महत्वपूर्ण काम किया। उसका जो काम शेष रह गया था वह मेरे 'अनुज' के हाथों पूरा हुआ है। अतः मैं प्रसन्न हूँ और इसीलिये जन्नतनशीं हजरत दाग के इन शब्दों को दोहराने की आवश्यकता अब महसूस नहीं करता कि––

'गम से कहीं नजात मिले चैन पाएँ हम।
दिल खून में नहाए तो गंगा नहाएँ हम' ॥

भाद्र कृष्ण चतुर्थी,
हिंदी-विभाग,
काशी हिंदूविश्वविद्यालय,
वाराणसी।

'रुद्र' काशिकेय

पद्माकर और गंगालहरी

कविवर पद्माकर रीतिकाल के अंतिम चरण के सुप्रसिद्ध और संमानित कवि थे। इनके मूल पुरुष आंध्र निवासी तथा तेलुगु भाषाभाषी थे। वे स्थानीय परिस्थितियों एवं व्यक्तिगत आवश्यकताओं के कारण सम्राट् अकबर के समय संवत् १६१५ वि० में मुंगीपट्टन् (मधुपुरी), श्रीरंगपट्टन् और कालेश्वर होते हुए नर्मदा के किनारे कोटतीर्थ, गढ़ापत्तन् में आए।[1] वहीं से उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों—आमेर, बूंदी, रतलाम, झालावाड़,

---

१. वर्षे वाणरसारसेन्दुमिलिते श्रीमद्गढ़ापत्तने।
रम्ये नार्मदकोटतीर्थकलिते दुर्गावतीपालिते॥
मूंगीपट्टनतोऽथवा मधुपुरीश्रीरङ्गकालेश्वरात्।
संयाता किल दाक्षिणात्य विबुधा सार्द्ध शतं सप्त च॥

—वंशोपाख्यानम्।

[देवनागर, वत्सर १, अंक १, वैं० संवत् १९६४ के 'पद्माकर कवि' शीर्षक स्व० श्री नकछेदन तिवारी (अजान कवि) के पृष्ठ १७ के लेख से उद्धृत। इस लेख की टिप्पणी में संपादक ने यह लिखा है कि कवि ने यह लेख 'श्रावण संवत् १९६२ (अगस्त, १९०५) में लिखा था परंतु उनके जीवनकाल में यह प्रकाशित न हो सका।' इनके अतिरिक्त लाला भगवानदीन ने पद्माकर के वंशज से प्राप्त कर इसे 'हिम्मतबहादुर विरदावली' (सन् १९०८ ई०) पृष्ठ १–२ में, तथा श्री भालचंद कवीश्वर तैलंग (माधुरी, फरवरी, १९३४ पृष्ठ ७४) और पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने पद्माकर ग्रंथावली (पृष्ठ ४१) में इसको दिया है। किंतु श्लोककी चौथी पंक्ति के 'सार्द्धशतं सप्त च' का अर्थ तिवारी जी और रायबहादुर हीरालाल ने (सागरसरोज, पृष्ठ ५८ में) ७५० और श्री तैलंग एवं मिश्र जी ने १५७ दिया है। मिश्र जी तथा भालचंद जी ने द्वितीय पंक्ति में 'कलिते' की जगह 'मिलिते' पाठ दिया है। इस अर्थभेद से कोई भी अंतर विषय के प्रतिपादन में नहीं पड़ता।

अनूपशहर, काशी, प्रयाग, आगरा, कानपुर, भदावर, बुंदेलखंड इत्यादि—स्थानों में बस गए। ये लोग विद्याव्यसनी ब्राह्मण थे तथा तंत्र एवं अनुष्ठान-सिद्धि के लिये प्रसिद्ध थे। इसके कारण इनकी इन स्थानों पर ससंमान प्रतिष्ठा हुई। जिस समय ये गढ़ापतन् में आए उस समय रानी दुर्गावती का वहाँ शासन था और उन्होंने इन लोगों का पर्याप्त संमान भी किया। उनमें से कुछ वहीं बस गए और कवि पद्माकर के पूर्वपुरुष मधुकर भट्ट तथा अन्य कई लोग श्री गोस्वामी विट्ठलनाथ के आश्रय में उत्तर भारत आए जिनमें से कुछ लोग मथुरा और कुछ गोकुल में बसे। जो लोग गोकुल में बसे वे 'गोकुलस्थ' और मथुरावाले 'मथुरास्थ' कहलाए। ये लोग अत्रि गोत्रीय तैत्तिरीय शाखा के तैलंग ब्राह्मण थे। इन्होंने स्वयं को तलंग, भट्ट, माथुर[1] लिखा है। यद्यपि पद्माकर के पूर्वपुरुष अहिंदी-भाषा-भाषी थे तो भी इस वंश के लोगों ने हिंदी साहित्य की जो सेवाएँ की हैं वे सदा से प्रशंसनीय हैं।

पद्माकर के जीवनवृत्त एवं वंशपरंपरा के संबंध में प्रामाणिक विस्तृत सामग्री पं० नकछेदी तिवारी 'अजान' कवि ने सन् १९०५ ई० में तथा लाला भगवानदीन ने 'हिम्मतबहादुर बिरदावली' की भूमिका के रूप में प्रस्तुत की थी। उनके पहले भी पद्माकर के संबंध में कुछ लिखा जा चुका था।[2] बाद में उनके वंशधरों या विद्वानों द्वारा पर्याप्त सामग्री हिंदीजगत् के

---

१. जगत विनोद के प्रत्येक अध्याय के अंत में 'मथुरा स्थाई मोहनलाल भट्टात्मज कवि पद्माकर विरचिते जगद्विनोद नाम्नि काव्ये' लिखा है। दे० परिशिष्ट ३—१।

२. देखिए शिवसिंहसरोज, कवि सं०, ४४६।

५०६—पद्माकर भट्ट—बाँदा वाले। १८१५ ई० में उपस्थित।

रागकल्पद्रुम, सुंदरीतिलक, शृंगारसंग्रह। यह बाँदा वाले मोहन भट्ट (सं० ५०२) के पुत्र थे। पद्माकर पहले नागपुर के रघुनाथ राव, सामान्यतया अप्पा साहिब के नाम से प्रसिद्ध (शासन-काल १८१६-१८ ई०), के दरबार में गए, जहाँ अपनी कविता के लिये इन्हें बहुत पुरस्कार मिला। तदनंतर यह जयपुर गए, जहाँ जगतसिंह सवाई (१८०३-१८ ई०) के नाम पर जगद्विनोद (रागकल्पद्रुम) नामक ग्रंथ रचा। इनके पौत्रों में से गदाधर भट्ट (सं० ५१२) का उल्लेख किया जा सकता है।

(हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० २४५)

संमुख आई जिनसे उनके जीवनवृत्त पर प्रकाश पड़ता है, भले ही ऐसे तथ्यभेद दृष्टिगत हों जिनका प्रभाव मूल तथ्यों पर न पड़ता हो।

पद्माकर जिस कुल[1] में उत्पन्न हुए उसमें काव्यलेखन की परंपरा बड़ी प्राचीन रही है और उसके साथ ही मंत्र-तंत्र सिद्धि तथा अनुष्ठान की वृत्ति भी। यह गुण पद्माकर में भी था। इनके पूर्वजों का संमान इसी कारण अनेक राजवंशों में था। विरासत के रूप में पद्माकर को ये गुण प्राप्त हुए थे। मधुकर भट्ट की पांचवी पीढ़ी में इनके पितामह जनार्दन भट्ट हुए जो बाँदा में रहते थे। जनार्दन भट्ट के पुत्र मोहनलाल[2] हुए जो पद्माकर के पिता थे। वे एक विख्यात कवि थे और साहित्यशास्त्र, काव्य तथा मंत्र-तंत्र-सिद्धि के लिये प्रतिष्ठित थे। इनका अपने समय में संमान था और अपने इन्हीं गुणों के कारण सागर के अप्पा साहब रघनाथ राव के दरबार के ये मुसाहिब बने। साथ ही इन्हें पन्नानरेश का मंत्रगुरु होने का गौरव भी प्राप्त हुआ तथा जयपुरनरेश के दरबार में इन्हें 'कविराज शिरोमणि' पदवी से भी विभूषित किया गया।

इन राजदरबारों से समान और यश के साथ ही संपत्ति[3] भी इनके पिता को प्राप्त हुई। इस प्रकार पद्माकर ख्यातिलब्ध एवं सुसंपन्न पिता के घर संवत् १८१० में उत्पन्न हुए। कुछ लोग इनका जन्मस्थान बाँदा और

---

१. प्रथम वंशवृक्ष लाला भगवानदीन संपादित हिम्मतबहादुर बिरदावली से, द्वितीय भालचंद कवीश्वर के (माधुरी, फरवरी १९३४) निबंध से उद्धृत --दे० परिशिष्ट (१, २)।

२. यह विख्यात कवि थे। पहले यह पन्ना के बुंदेले महाराज हिंदूपति की सभा में रहे, अनंतर जयपुर के सवाई प्रतापसिंह (१७७८-१८०३ ई०) और सवाई जयसिंह (१८०३–१८१८ ई०) के दरबार में रहे। इन्हीं के पुत्र प्रसिद्ध कवि पद्माकर हुए और जिनके पोते गदाधर हुए।--(टाडकृत राजस्थान, खंड २, पृ० ३७५ और ४१४, कलकत्ता संस्करण)।

३. पाँच गाँव की सनद महाराज पन्ना से तथा सवाई महाराज प्रतापसिंह जयपुरनरेश से एक हाथी, स्वर्णपदक, जागीर तथा कविराजशिरोमणि की उपाधि मिली। (दे० माधुरी, फरवरी १९३४, पृ० ८०)

कुछ सागर[१] मानते हैं। जो कुछ भी हो, यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि इनका पालन पोषण, अध्ययन सागर में ही हुआ, क्योंकि इनके पिता उस समय वहीं थे। इन्होंने वे सभी शिक्षाएँ पाई जो इनके कुल परिवार की विशेषता थी, साथ ही राजदरबार से संबद्ध शिक्षा भी। इनका अपने पिता से संबद्ध राजपरिवारों में प्रवेश भी हुआ और उनसे उनका घनिष्ठ अंतरंग संबंध भी था।[२] लाला भगवानदीन को इनका प्रकृत नाम प्यारेलाल[३] बताया गया।

जिस समय ये उत्पन्न हुए उस समय दिल्ली में शाहआलम द्वितीय का कमजोर शासन था और मराठे अपने उत्कर्ष पर थे। देश छोटे छोटे राज्य खंडों में विभक्ति था। प्रत्येक राज्य एक दूसरे से अपने को श्रेष्ठतर प्रमाणित करने में व्यस्त था। इसके लिये प्रत्येक राज्य को कवि और कलाकार की अपेक्षा थी और प्रत्येक दरबार के आवश्यक अंग के रूप में वे अंगीकार भी किये जा चुके थे। साथ ही, युद्ध में उद्बोधन के लिये भी कवियों की विशेष आवश्यकता पड़ती थी। छोटे मोटे जागीरदारों से लेकर बड़े बड़े राजा और महाराजा तक इनका उपयोग इन कार्यों के लिये करते थे। अच्छे कवि और कलाकारों को इसीलिये विशेष रूप से उनके यहाँ उस समय संपदा, संमान एवं आश्रय मिलता था। जहाँ युद्ध के समय वे वीररस की रचनाएँ करते थे वहीं अवकाश के समय शृंगारिक रचनाओं द्वारा दरबार के वातावरण को ये रससिक्त करते और आश्रयदाता के यशविस्तारका आयोजन भी करते।

---

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल (हिंदी साहित्य का इतिहास, संशोधित परिवर्द्धित १३वाँ पुनर्मुद्रण, पृष्ठ २६४) तथा डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आव बाँदा (पृ० १०३) इनका जन्मस्थान बाँदा मानते हैं, विशेष विद्वान् प्रायः सागर।

२. 'रघुनाथ राव तथा पन्ना और जयपुर के रनवासो में उनका परदा न था। सब ही उत्सवों पर तथा त्यौहारों में रानियों को पूर्ण शृंगार लिए हुए अपनी आँखों देखते थे।'

(पदमाकर वंशीय प्रभाकर कवि से दीन जी को ज्ञात)

--हिम्मतबहादुर बिरदावली, पृष्ठ ४।

३. इन्हीं प्रभाकर कवि द्वारा बताया गया (देखिए हिम्मतबहादुर बिरदावली, पृष्ठ ४); तथा सागरसरोज पृ० ५८--(रायबहादुर हीरालाल)।

पद्माकर भी ऐसे ही कवियों में थे जिन्हें गौरवशाली सुअवसर प्राप्त था। वे अन्यों की अपेक्षा अपना प्रभाव अधिक स्थापित कर सकने की स्थिति में भी थे। एक तो वंश की ख्याति के कारण, दूसरे मंत्रसिद्धि के कारण, तीसरे राजरजवाड़ों में पूर्वप्रवेश के कारण और चौथे अपनी कवित्व-शक्ति और प्रतिभा के कारण।

पद्माकर का कविजीवन सागरनरेश के दरबार से आरंभ हुआ। यह आरंभ ही अपने में इतना महत्वपूर्ण एवं उत्साहवर्धक था जिसने पद्माकर की गति को इस क्षेत्र में चेतना का पंख दिया। रघुनाथ राव को उन्होंने १६ वर्ष की आयु में जो सुंदर रचना सुनाई वह आज तक जनप्रिय है। वह रचना थी 'संपति सुमेर की·····'।[1] नरेश ने इस कविता के लिये जीवन में प्रवेश करनेवाले इस कवि का संमान मात्र ही नहीं किया, अपितु एक लाख मुद्राएँ भी दीं जिसके कारण आज तक यह वंश और उक्त कवित्त 'लाखिया' के नाम से प्रतिष्ठित हैं।

इस वंशपरंपरा तथा संमान ने जहाँ पद्माकर को वातावरण दिया, अनुभव का अवसर दिया, वहीं स्वभाव में राजसी वृत्ति भी दी। इसी वृत्ति के कारण पद्माकर एक स्थान पर न टिक सके क्योंकि यह वृत्ति भोगमूलक होती है और स्वाभिमान नहीं, अहं के कारण, जो प्रायः होने पर भी निराधार स्वार्थमूलक होने के कारण किसी से पटने नहीं देती। पद्माकर का जीवन इसका सहज दृष्टांत है। रघुनाथराव से भी इनकी नहीं पटी और ये बाँदा जिलांतर्गत अपने गाँव ढुरई चले आए।

इसके पश्चात् बुंदेलखंड की जैतपुर जागीर के सुगरा के प्रसिद्ध योद्धा नोने अर्जुनसिंह की तलवार एक लाख चण्डीपाठ के द्वारा उन्होंने सिद्ध कराई और उनके मंत्रगुरु बने। यह गौरव इनके कुल को अबतक सुगरा में प्राप्त है।[2] अर्जुनसिंह ने इन्हें आश्रय भी दिया और उनकी मृत्यु पर लिखे गए इनके कुछ छंद पद्माकर के हिम्मतबहादुर बिरदावली में उपलब्ध हैं और ये तब के बताए जाते हैं जब हिम्मतबहादुर द्वारा युद्ध में अर्जुनसिंह मारे गए

---

१. दे० परिशिष्ट ३–२

२. दे० देवनागर, प्रथम अंक (पृष्ठ १९)

थे। उस समय पद्माकर हिम्मतबहादुर के आश्रित थे और उन्होंने अपनी पहली प्रबंधरचना हिम्मतबहादुर विरदावली उन्हीं की प्रशस्ति में लिखी।

हिम्मतबहादुर की विरुदावली गाने के पूर्व वे सुगरा छोड़ चुके थे और दतिया के महाराज परिक्षित[1] के यहाँ चले गए थे। वहाँ भी उन्हें जागीर मिली। वहाँ से ही वे हिम्मतबहादुर के यहाँ सं० १८४६ वि० में पहुंचे थे। यद्यपि हिम्मतबहादुर का कृतित्व ऐसा नहीं था कि किसी श्रेष्ठ काव्य का वह नायक बन सके, तो भी मध्यकाल की तत्कालीन स्थिति में यह कोई बड़ी बात न थी। तत्कालीन आश्रयदाता से बड़ा उस समय कौन हो सकता था; भले ही भूतपूर्व आश्रयदाता के प्रति ही क्यों न वाणी की दावाग्नि उगलनी पड़े, स्वामी तो स्वामी। हिम्मतबहादुर के स्वयं कवि होने के कारण तथा उनके कविताप्रेम के कारण इनका संपर्क वहीं सुप्रसिद्ध कवि ठाकुर[2] से हुआ।

यहाँ से संवत् १८५५ वि० में कविवर पद्माकर सितारा दरबार गए। वहाँ इनका स्वागत सत्कार तो हुआ ही, पुरस्कारस्वरूप श्रीसंपदा भी मिली।[3] वहाँ से संवत् १८५६ वि० में पुनः वे उन्हीं सागर-नरेश रघुनाथ[4] राव के दरबार में पहुंचे जहाँ से उनकी काव्यवाणी प्रस्फुटित हुई थी। वहाँ इनका फिर संमान हुआ पर ये टिक न सके और अपने घर बाँदा लौट आए।

बाँदा से ये जयपुर गए। वहाँ उस समय सवाई महाराज प्रतापसिंह सिंहासनारूढ़ थे। वे अच्छे कवि तो थे ही, कवियों एवं कलाकारों के गुण-ग्राहक भी थे। पद्माकर को उन्होंने अपने दरबार का कवि बना लिया। उनके साथ उन्होंने यात्राएँ भी कीं और काशी[5] भी आए। उनके मृत्युपर्यन्त[6] उनके यहाँ ही ये रहे और फिर बाँदा लौट आए।

पद्माकर ऐसे सरस्वतीसुत थे जिनपर लक्ष्मी की कृपा सदा से रही। अतुल संपत्ति उन्होंने अर्जित की और संगसाथ सदा ऐसे लोगों का उन्होंने

---

१. दे० पद्माकर कवि, पृष्ठ २२।
२. दे० हिम्मतबहादुर, बिरदावली, पृ० ५।
३. दे० पदमाकर कवि, पृष्ठ २४।
४. दे० परिशिष्ट ३। ४।
५. पदमाकर कवि०, पृ० २७।
६. दे० परिशिष्ट ३। ५।

किया जो दरबारी संस्कृति में डूबे हुए लोग थे। इसलिये जहाँ दरबारी जीवन के भीतर डूबकर उन्हें अनुभूति के रत्न मिले वहीं वे कुटेव भी लगे जो ब्राह्मण एवं वाणी के साधक के लिए सदैव से अभिशाप सिद्ध होते रहे हैं। उनमें राजसी आन बान और दिखावे से रहने मात्र की ही प्रवृत्ति का उदय नहीं हुआ, अपितु काम एवं भोग की तृष्णा भी जागी और विलासलीला भी उनके जीवन का आवश्यक अंग बन गई। कहा जाता है, जब वे चलते थे तो राजाओं की तरह जुलूस चलता था[1] और उसमें गणिकाएँ तक रहती थीं। जयपुर में ही एक सुनारिन[2] से उनका स्थायी कामसंबंध हो गया और वह उनके साथ रहने भी लगी थी। उसके साथ कामभोग की प्रवृत्ति उनके भविष्य के लिए कुठार सिद्ध हुई।

बाँदा से पुनः महाराज प्रतापसिंह के पुत्र महाराज जगतसिंह के दरबार में ये जयपुर पहुंचे। उन्होंने भी इन्हें अपना राजकवि ससंमान बनाया। यहां वे संमानपूर्वक अनेक वर्ष रहे और महाराजा की प्रिय वस्तुओं पर—हाथी से लेकर तीतर बटेर तक पर-कविता करते रहे। यहीं उन्होंने नायिका भेद का अपना सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रंथ जगद्विनोद जगतसिंह के नाम पर रचा। इस ग्रंथ के निर्माण पर बहुत बड़ा पुरस्कार महाराज जगतसिंह ने इन्हें दिया। यहीं इन्हें कोढ़ हो गया जिसने इनके जीवन की दिशा ही बदल दी! जयपुर से इन्होंने बाँदा, उदयपुर आदि राजदरबारों की यात्राएं की थीं जहां पर इनका आदर सत्कार हुआ। जयपुर में ये सुप्रसिद्ध चारण कवि बाँकीदास[4] के संपर्क में आए।

---

१. पद्माकर की काव्यसाधना, पृ० ३१ तथा परिशिष्ट ३।६।
२. पद्माकर की काव्यसाधना, पृ० ३९।
३. जोधपुर की गद्दी के ३५वें महाराज थे। माघ शुक्ल ११, सं० १८३९ को जन्मे। माघ शुक्ल ५ सं० १८६० को गद्दी पर बैठे और भाद्रपद शुक्ल ११, सं० १९०० को परलोकवासी हुए—देवनागर (पृष्ठ २४) तथा परिशिष्ट ३।७।
४. 'भादों सुदी ८, संवत् १८७० को महाराजा मानसिंह[3] की शादी जयपुर के महाराजा जगतसिंह की बहन से और दूसरे दिन महाराजा जगतसिंह की शादी महाराजा मानसिंह की बाई से गाँव 'रूपनगर' इलाके राज किसनगढ़ में हुई। महाराजा जगतसिंह के साथ कवि पदमाकर था। उससे और कविराजा बाँकीदास से चर्चा हुई थी।'—इतिहास जोधपुर (मुन्शी देवीप्रसाद)।

इसके उपरांत जयपुर से ये ग्वालियर नरेश दौलतराव सिंधिया[1] के यहाँ गए जहाँ 'आलीजाहप्रकाश' की रचना संवत् १८७८ में की और उनके दरबारी सरदार ऊदोजी के आग्रह पर हिंदी में हितोपदेश (राजनीतिवचनिका) का अनुवाद किया। जगद्विनोद का तोड़मरोड़ तथा कुछ हेर फेर एवं शब्दों का अदल बदल मात्र इस रचना में किया गया है। इससे ऐसा लगता है कि इनका काव्यपौरुष भी वृद्धत्व की अशक्तता की ओर पहुँच रहा था। जीवन नई अनुभूतियों का घर बन रहा था।

भोगविलास और संपदा की अजस्र[2] धारा इन्हें कोढ़मुक्त न करा सकी और सतत संमान के ओज से जीवन को उल्लसित करनेवाले कवि को वह तिरस्कार एवं अपमान की कर्मनाशा में गोते खिलाने लगी। ऐसी स्थिति में मनुष्य से भी बड़ी सत्ता की शरण में जाने के लिये वे उत्प्रेरित हुए और जयपुर में ही 'प्रबोधपचासा' की रचना उन्होंने की पर पूर्ण रूप से रोगमुक्त नहीं हुए। फिर भी मन नहीं माना और ये संवत् १८८४ वि० में चरखारी नरेश के दरबार में गए। इनके सुनारिन के संसर्ग एवं कोढ़ के कारण इनका वहाँ बड़ा अपमान हुआ और नरेश ने इनसे मिलने तक से इनकार किया।[3] कवि का आत्मसंमान जागा और जीवन की सांध्य बेला में उन्होंने पंडितराज जगन्नाथ के मार्ग का अनुसरण किया।

वहाँ से वे सीधे पतितपावनी जाह्नवी के तट पर वास करने के लिये कानपुर चले। रास्ते में उन्होंने अपने अंतिम ग्रंथ 'गंगालहरी' की रचना प्रारंभ की और रीतिकाल के अपने श्रेष्ठ साहित्य में एक नया गौरवपूर्ण अध्याय जोड़ा। शृंगार एवं विलास का कवि गंगा भक्ति की अनंत गरिमा के गीत गाते हुए गंगा तट पर कानपुर में ही रहने लगा। कहा जाता है, वे कोढ़-

१. दे० परिशिष्ट। ३।
२. कहते हैं, पद्माकर ने अपनी काव्यशक्ति के प्रभाव से ५६ लाख रु० नकद, ५६ गाँव, और ५६ हाथी इनाम में पाए थे। उन गाँवों की सनदों में से कई एक सनदें और स्वयं गाँव अभी तक उनके वंशधरों के कब्जे मे हैं। अजयगढ़ रियासत से मिली हुई एक गाँव की सनद स्वयं हमने उनके वंशधर के पास देखी है। हमने उसकी नकल लेनी चाही, पर उन्होंने नकल देने से इंकार किया।
—हिम्मतबहादुर बिरदावली, पृ० १५।
३. दे० परिशिष्ट ३। ८।

मुक्त हो गए पर सदा के लिये उन्होंने सं० १८९० वि० में वहीं गंगालाभ कर लिया।

पद्माकर की रचनाएँ

डा० ग्रियसंन ने पद्माकर की तीन रचनाओं का उल्लेख किया है[1] :—रागकल्पद्रुम (जगद्विनोद), सुंदरीतिलक और शृंगारसंग्रह। पं० नकछेदी तिवारी ने इनकी निम्नांकित आठ रचनाओं को देखने सुनने की बात कही है—

१—हिम्मतबहादुर विरुदावली, २—आलीजाहप्रकाश, ३—भाषाहितोपदेश ४—जगतद्विनोद, ५—पद्माभरण, ६—प्रबोधपचासा, ७—रामरसायन, (भाषा वाल्मीकि), ८—गंगालहरी। साथ ही, इन्होंने यह भी बताया है, ४, ५, ६, ७ और ८ ये पांच ग्रंथ छप गए हैं, शेष १, २, और ३ कलमी पाए जाते हैं।[2] लाला भगवानदीन ने 'हिम्मतबहादुर विरदावली' में तिवारी जी द्वारा उल्लिखित रचनाओं के अतिरिक्त सवाई जयसिंह विरदावली की भी चर्चा उसकी भूमिका में की है। यह अप्राप्य है।

सभा की खोज रिपोर्टों में इनके अतिरिक्त ईश्वरपचीसी, जमुनालहरी, लिलहारी लीला आदि कुल ११ रचनाओं का विवरण मिलता है।

नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पद्माकर ग्रंथावली में पं० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र ने इनकी निम्नांकित रचनाएँ संपादित एवं संकलित की है—

१—हिम्मतबहादुर विरुदावली, २—पद्माभरण, ३—जगद्विनोद, ४—प्रबोधपचासा, ५—गंगालहरी, ६—प्रतापसिंह विरुदावली, ७—कलिपचीसी। हितोपदेश एवं रामरसायन अनुवाद होने के कारण इन्होंने उसमें संमिलित नहीं किया है। इस प्रकार इनकी इन नौ रचनाओं को ये मौलिक मानते हैं। इनके अतिरिक्त अर्जुनसिंह रायसा[3] नामक इनके एक और ग्रंथ की भी चर्चा की जाती है, जो अप्राप्य है। जो कुछ भी हो, इतना तो निर्विवाद रूप से सभी लोग स्वीकार करते हैं कि इनकी लिखी सात मौलिक रचनाएँ अवश्य हैं। उनका संक्षिप्त परिचय जान लेना अप्रासंगिक न होगा :

---

१. हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास, पृ० (२४५) तथा पृ० ९ का उद्धरण २।

२. देवनागर, पृष्ठ २५।

३ देवनागर, अंक १, पदमाकर ग्रंथावली, पृष्ठ ४७।

हिम्मतबहादुर विरुदावली——[1]अजयगढ़ के गुसाँई अनूपगिरि (हिम्मतबहादुर) की प्रशस्ति में लिखा गया २११ छंदों का यह काव्य है जिसमें छप्पय, भुजंगप्रयात, डिल्ला, हरिगीतिका, हाकल और त्रिभंगी छंदों का प्रयोग किया गया है। इसमें अधिकांश छंद हरिगीतिका के हैं। इसमें निम्नांकित विषयों का वर्णन है——

मंगलाचरण, हिम्मतबहादुर की प्रशस्ति, अर्जुनसिंह पर आक्रमण, ज्योतिषी से मंत्रणा, युद्ध की तिथि, युद्धारंभ, क्षत्रियों के विभिन्न वंश, रणनाद, कड़खागान, सैन्यसज्जा, गजसेना, हयसेना, पदातिक, विविध अस्त्र शस्त्रों का प्रयोग, हिम्मतबहादुर का युद्ध में पराक्रम, अर्जुनसिंह द्वारा क्षत्रियधर्म का कथन, अर्जुनसिंह की रणसज्जा, प्रत्याक्रमण के लिये प्रस्थान, हिम्मतबहादुर का उत्साह, मांधाता की वीरगति, गंगागिरि का आहत होना, अर्जुनसिंह का रणकौशल, जुल्फिकार की मृत्यु, अर्जुनसिंह के युद्ध की विभीषिका, अनेक प्रकार के खड्ग, अर्जुनसिंह की वीरगति, चंडी का नृत्य, जयजयकार, उपसंहार।

यह सामान्य कोटि का केशव तथा सूदन की परिपाटी पर निर्मित वीर-प्रशस्ति-काव्य है। इस प्रबंध काव्य को साहित्यिक दृष्टि से उच्च कोटि का मानना समुचित नहीं है।

पद्माभरण——यह अलंकार ग्रंथ है जिसमें ३४४ छंदों में अलंकार का वर्णन किया गया है जो चंद्रालोक, कुवलयानंद और बैरीसाल के भाषाभरण के आधार पर दोहा, चौपाई एवं सोरठा में रचित है। यह इनका सफल अलंकार ग्रंथ माना जा सकता है। इसकी विशेषता इसकी बोधगम्यता है।

जगद्विनोद——[2]यह नायिकाभेद का इनका अति संमानित, यशस्वी ग्रंथ है जिसमें शृंगार रस और नायक-नायिका-भेद का वर्णन किया गया है और अंत में अन्य रस भी संक्षेप में वर्णित हैं। यह महाराज जगतसिंह के नाम पर रचा गया है। इसके उदाहरण और लक्षण दोनों ही पद्माकर के पांडित्य एवं कौशल के परिचायक हैं। यह इनका सर्वाधिक प्रसिद्ध और सर्वोत्तम ग्रंथ माना जाता है। यह ग्रंथ ७३१ छंदों में वर्णित है। इसमें दोहा, कवित्त, सवैया आदि छंद हैं।

---

१. दे० पृ० १२–१३।

२. दे० पृ० १४]

आलीजाहप्रकाश[1]—दौलतराव सिंधिया के नाम पर लिखा गया यह ग्रंथ (आलीजाहप्रकाश) जगद्विनोद का ही सामान्यतः परिवर्तित रूप है जिसमें कहीं कुछ छंदों में हेरफेर कर दिया गया है और कहीं छंद कुछ बदल दिए गए हैं, कहीं कुछ शब्द और कहीं कुछ स्थान। इसलिये इस ग्रंथ को उसका परिवर्तित रूप ही मानना चाहिये।

प्रबोधपचासा[2]—यह इनके ५१ कवित्त सवैया छंदों का संग्रह है। यह ग्रंथ शंकर की वंदना से आरंभ होता है। इस पुस्तक से यह प्रकट होता है कि पद्माकर रामभक्त थे। उनके हृदय की सहज मर्मस्पर्शिनी अनुभूति इसमें संचित है। इसमें स्थान स्थान पर उत्कृष्ट उक्तियों तथा कवित्वशक्ति का दर्शन होता है। यह पुस्तक इनके जीवन के सुखभोग से विरक्त होने पर रची गई भक्तिमयी रचना है।

हितोपदेश[3]—संस्कृत के हितोपदेश का चंपू रूप में किया गया अनुवाद है। 'राजनीति की वचनिका' के नाम से भी इसे लोग संबोधित करते हैं।

प्रतापसिंह विरुदावली[4]—प्रतापसिंह विरुदावली में १२२ (छप्पय, हरिगीतिका, पद्धरि, त्रिभंगी, भुजंगप्रयात, नाराच, अमृतध्वनि) छंद हैं। यह भी हिम्मतबहादुर विरुदावली के ढंग की रचना है। इस रचना में भी प्रबंध काव्य की दृष्टि से कोई गुणविशेष नहीं है। हाँ, प्रतापसिंह की विरुदावली बखानने के लिये तथा युद्ध का वर्णन कर उनके शौर्यगान के लिये उसकी कल्पना कर ली गई है। यह भी सामान्य कोटि का ग्रंथ है।

कलिपचीसी—(ईश्वरपचीसी) यह हठवादी निर्गुनियों की पद्धति पर लिखा गया २६ लावनियों में पद्माकर का रचा ग्रंथ बताया जाता है।

रामरसायन—हरिगीतिका, दोहा, चौपाई, सोरठा में वाल्मीकि रामायण का अनुवाद है। इस रचना के पद्माकररचित होने के संबंध में संदेह है, क्योंकि रचना बड़ी शिथिल है।

---

१. दे० पृ० १५।
२. दे० पृ० १५।
३. दे० पृ० १५।
४. दे० पृ० १३।

इसके अतिरिक्त इन्होंने अन्यान्य विषयों पर भी अनेक मार्मिक स्फुट रचनाएँ तथा समस्या पूर्तियाँ की हैं, यथा व्रत, त्योहार मेला, ऋतु आदि।

गंगालहरी[1]--प्रस्तुत पुस्तक 'गंगालहरी' उनके जीवन काल की अंतिम रचना है। इसकी महत्ता में तथा रचना के संबंध में पद्माकर के जीवनवृत्त में निवेदन किया जा चुका है। इस रचना पर विचार करने के पूर्व यह आवश्यक है कि गंगा का हमारे साहित्य में क्या स्थान है, और इस रचना के पूर्व उसमें गंगा की क्या स्थिति रही है, देख लिया जाय।

प्रकृति लोकजीवन की अनादि पोषिका शक्ति के रूप में सर्वत्र अनादि काल से प्रतिष्ठित है। मानव जीवन के अभ्युदय की मूल प्रेरणाशक्ति के रूप में वह सनातन चेतना बनकर सदा से अभिनंदित है। उसे समाज की जननी के रूप में सर्वत्र स्वीकार किया गया है। वह न केवल अनन्य क्षेममयी तथा लोकोपकारिणी मात्र है, अपितु लोकमानस की चेतना को उद्दीप्त करनेवाली परमाशक्ति भी है। इसलिये संसार में सर्वत्र साहित्यकार द्वारा वह सदैव से प्रेरणाशक्ति के रूप में मर्यादित होती चली आ रही है और आज भी उसकी वह अखंड गरिमा यथावत् बनी हुई है और तब तक बनी रहेगी जब तक सृष्टि है।

भारतवर्ष में प्रकृति की पूजा अनादि काल से चली आ रही है और उसके उन सभी तत्वों को, जिन्होंने लोकजीवन या मानस को प्रदीप्त किया है श्रद्धापूर्वक धर्म के आवश्यक अंग के रूप में प्रग्रहीत कर सर्वदा के लिये श्रद्धा का पात्र बना लिया गया है। भारतवर्ष में गंगा की भी यही स्थिति है। यहाँ गंगा केवल विशाल नदी के रूप में ही नहीं, अपितु जीवन को उत्प्रेरित करनेवाली शक्ति के रूप में ग्रहण की गई है और उनका स्थान भगवान् शिव के मस्तक पर स्थापित किया गया है। सामाजिक दृष्टि से यदि देखा जाय तो कर्क रेखा की पेटी में रहते हुए भी राम और कृष्ण की लीला भूमि को मरुभूमि न होने देने मात्र का ही नहीं, उसे देश का सर्वाधिक प्रवर्द्धित और उपजाऊ मैदान बनाने का श्रेय भी गंगा और हिमालय को है। भगीरथ के पूर्वकाल से ही गंगा देश की ऐसी अनन्य शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है जिसकी महिमा किसी देवी देवता या माँ से कम नहीं। यह प्रत्यक्ष रूप से उत्तर भारत के लोकजीवन को मंगलमय बनाने में शतसहायक

---

[1] दे० पृ० १५, १६।

ऊर्मियों से अविकल प्रवहमान है । भारतवर्ष का साहित्य गंगा की गाथा और गौरव से भरा पड़ा है, क्योंकि वे लोकजीवन के आवश्यक अंग तो है ही, उनके क्रोड में भारतीय संस्कृति और जीवन की प्रगति की अनंत कहानियों की अजस्र रचना होती चली आ रही है । इसलिये भारतीय साहित्य में गंगा का विशेष महत्व है ।

संस्कृत साहित्य में गंगा का सर्वप्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है और उसके बाद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, सर्वत्र गंगा की महिमा वर्णित है। ऋग्वेद के मंत्र 'इमम् में गंगे यमुने सरस्वती'[1] में यद्यपि सात नदियों का उल्लेख है तो भी गंगा का नाम सर्वप्रथम लेकर उसकी महत्ता को स्वीकार किया गया है । संस्कृत साहित्य में ही गंगा का जितना वर्णन किया गया है, यदि उसकी चर्चा की जाय तो एक महाग्रंथ तैयार हो जाय । स्मृति और पुराणों[2] में भी गंगा सर्वत्र विराज रही हैं । संस्कृत के आदिकवि वाल्मीकि ने गंगा की महिमा का गौरवगान किया है। उनपर गंगाष्टक की रचना की है।[3] महाकवि कालिदास ने[4] गंगा यमुना के सुंदर संगम का अतुलनीय वर्णन किया है । अन्य कालिदास ने गंगाष्टक लिखा है । श्री शंकराचार्य का गंगाष्टक जगद्विख्यात है । नैषध में गंगा का सूत्र रूप में वर्णन है । उत्तर रामचरित् में भी गंगा की महिमा है । नीलकंठ दीक्षित ने तो गंगावतरण नामक एक प्रबंध काव्य ही लिख दिया । पंडितराज जगन्नाथ की गंगालहरी से सारा साहित्यजगत् परिचित है। रसखानि, रहीम,[5] आदि मुसलमान

---

१. इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या,
   असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जकीये श्रृणुह्या सुषोमया ।
२. आग्नेय पुराण, कालिका पुराण, कूर्म पुराण, गरुड़ पुराण, नारद पुराण, पद्म पुराण, ब्रह्म पुराण, ब्रह्मांड पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, भविष्य पुराण मत्स्य पुराण, मार्कंडेय पुराण, लिंग पुराण, वामन पुराण, वायु पुराण, वाराह पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, श्री महेवीभागवत, श्रीमद्भगवत तथा स्कंद पुराण में गंगा से संबद्ध साहित्य है ।
३. देखिए वाल्मीकि रामायण तथा गंगाष्टक (अक्षयवट मिश्र कृत हिंदी पद्यानुवाद ।)
४. दे० कालिदास ग्रंथावली ।
५. दे० पृ० २, ३ ।

कवियों ने भी संस्कृत में गंगा के ऊपर रचनाएँ की हैं। संस्कृत में गंगा जी का वर्णन निम्नांकित सात रूपों में मिलता है—

१—कथारूप में, (गंगा कौन है; कब, कैसे और क्यों उत्पन्न हुईं।) २—रूपवर्णन में, ३—माहात्म्यवर्णन में, ४—प्रायश्चित्तहेतु या पुण्योपार्जन के विषय में। ५—भक्ति-भाव-प्रदर्शन में, ६—काव्य में, ७—प्रासंगिक वर्णन में।

इन्हीं रूपों में अन्य भारतीय भाषाओं में भी गंगा का वर्णन किया गया है, यहाँ तक कि पुराणों में तो गंगासहस्रनाम ही है।

गंगा का वर्णन केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं मिलता, अपितु फारसी साहित्य में भी गंगा का वर्णन मिलता है। अमीर खसरो ने मसनवी दवल रानी खिजिरखानी में गंगा की महिमा में निम्नांकित पद्य लिखा है—

कसे कज गंग हिंदुस्ताँ बुवद दूर।
जे नील व दजला लाफद हस्त माजूर।।'

(जिन लोगों ने नील और दजला को ही देखा है, यदि उन्होंने गंगा को देखा हो तो वे गंगा की ही प्रशंसा करते—'नील' वा 'दजला' की प्रशंसा में कुछ न कहते।)

सुप्रसिद्ध फारसी कवि अली हजीं गंगाजल की महिमा फरमाते हैं—

परी रुखाने बनारस बसद करिश्मवो रंग
पये परस्तिशे महदेव चूंकुनद आहंग
बगंग गुस्ल कुनद व बसंग पामालंग
जहे शराफते संगो जहे लताफते गंग।

(बनारस में जिनका मुख परियों जैसा है, शतशत भावों एवं रंगों से महादेव जी की पूजा करने के लिये जब वे कामना करती हैं तो वे गंगा में स्नान कर घाट के पत्थरों पर पैर रगड़ती हैं। इन पत्थरों की शराफत और गंगा की मधुरता देखने योग्य है।)

गंगास्तुति नामक ग्रंथ के आधार पर सन् १८६० ई० में मथुराप्रसाद ने 'एजाज गंग' की रचना की। इसके अतिरिक्त फारसी में अनेक संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद हुए जिनमें गंगा की चर्चा है। इन्हें देखने से ऐसा लगता है कि विदेशी संस्कृति से प्रभावित लोग भी भारत आने पर गंगा से प्रभावित हुए और उन्होंने उसकी प्रशस्ति में रचनाएँ कीं।

हिंदी में केवल पूर्ववर्ती साहित्य के प्रभाव के कारण ही नहीं, गंगा के स्वर्ग के प्रभाव के कारण भी निरंतर रचना होती चली आ रही है और प्रायः हिंदी के सभी समर्थ कवियों ने गंगा के प्रति श्रद्धांनिवेदन किया है। उनकी झाँकी लेना अप्रासंगिक न होगा।

हेमचंद्र के संग्रह में गंगा संबंधी रचनाएँ संग्रहीत हैं।[1] 'ब्रह्म कमंडल बास सुबासिन' गंगा की शरण में जाने के लिए हिंदी-कवि-कोकिल विद्यापति[2] लालायित हैं। सूरदास[3] 'गंग तरंग' बिलोककर संतत सुख प्राप्त करते हैं। केशव[4] द्रव-रूप-गात गंगा को कोटि कोटि जन्म के पाप का मिटानेवाली घोषित करते हैं। तुलसीदास तो पुकार पुकारकर कह उठते हैं कि इस श्लोक की नींव

---

१८. दे० परिचय में उद्धृत कविता, पृष्ठ १।

३. देखिए, परिचय, पृष्ठ २; तथा

ब्रह्म कमंडल बास सुबासिनि सागर-नागर-गृहबाले।
पातक महिषविदारण कारण, धृत करबाल बीचिमाले॥
जय गंगे, जय गंगे! शरणागतभयभंगे।

३. गंगतरंग बिलोकत नैन।
अति पुनीत विष्णु पादोदक महिमा निगम पढ़त गुन चैन।
परम पवित्र मुक्ति की दाता भागीरथी भई बरदैन॥
त्रिभुवनहार सिंगार भगवती सलिल चराचर जाके ऐन।
सूरदास बिधना के तप तें प्रगट भई संतत सुखदैन॥

४. भूतल की बेनीसी त्रिवेनी सुभ सोभिजात;
एक कहैं सुरपुर-मारग बिभात है।
एक कहैं पूरन अनादि जो अनंत कोऊ
ताकी यह 'कैसोदास' द्रव्य रूप गात है॥
सब सुखकर सब सोभाकर मेरे जान
कौनो यह अद्भुत सुगध अवदात है।
दरस परस हूँ ते थिर चिरजीवन को,
कोटि कोटि जन्म की कुगंधि मिट जात है॥

परी हरि लोक विलोकति गंग तरंग तिहारे।[1] मतिराम[2] एवं थान ने भी गंगा की गौरवगाथा गाई। ये हिंदू थे; गंगा इनके लिये देवी हो सकती थी। पर मुसलमान भी इनकी महिमा के गुणगान से बिलग न रह सके। यहाँ तक कि सम्राट् अकबर[3] निरंतर गंगाजल का सेवन करते थे। रहीम[4] रसखानि,[5] शेख, अनीस तथा रसलीन ने भी गंगा का गौरवगान किया है। रहीम और रसखानि ने तो संस्कृत में भी श्लोक लिखें हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

शेख फरमाती है—

'अंबर पखारे से बनैहै दिगंबर तोहि
छलक छुआए गजछाल तन छाइलै।
अंग बोरि गंग में निहंग ह्वैकै बेगि चलि
आगे आइ बैल धोइ बैल गैल लाइ लै।।

रसलीन तो उन्हें जहान पर कृपा करनेवाला मानकर गा उठे—

बिशुन जू के पग तें निकसि संभु सीससि
भगीरथ तप तें कृपा करी जहान पैं।
पतितन तारिबे की रीत तेरी ऐ री गंग,
पाई रसलीन इहै तेरिए प्रमान पैं।

१. देखिए कवितावली, विनयपत्रिका एवं रामचरितमानस। उदाहरण के लिये देखिए परिचय, पृष्ठ ३।

२. पारावार पीतम कौ प्यारी ह्वै मिली है गंग
बरनत कोउ कबिकोबिद निहारि कै।
सो तो मतो मतिराम के न मन माने,
निज मति सों कहत यह बचन बिचारि कै।
जरत बरत बड़वानल सों बारिनिधि
बीचिनि के सोर सों जनावत पुकारि कै;
ज्यावत बिरंचि ताहि प्यावत पीयूष निज,
कलानिधिमंडल कमंडल तें ढारि कै।।

३. दे० शरच्चंद्र लाहिड़ी कृत 'अकबर'।
४. दे० परिचय, पृष्ठ २-३ पर उद्धृत कविता।
५. दे० परिचय, पृष्ठ ३ पर उद्धृत कविता।

कालिमाँ कलिंदी सरसुती अरुनाई दोउ,
मेटि कीन्हें सेत आपने विधान पैं।।
त्यों ही तमोगुन रजोगुन सब जगत के,
कारिकै सतोगुन चढ़ावत विमान पैं।।

इस प्रकार यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि गंगा के संबंध में स्फुट रूप से चर्चा बराबर पद्माकर के पूर्व तक होती रही है जिसमें गंगा का यश, उनकी स्तुति, शोभावर्णन तथा उनका गुण-गौरव गान कहीं कहीं सीधे किया गया है, कहीं कहीं प्रसंगवश तथा कहीं कहीं धार्मिकतावश भी। पर पद्माकर की गंगालहरी इस दिशा में हिंदी साहित्य में प्रथम अभिनंदनीय चरण है। यद्यपि इसकी प्रेरणाभूमि पद्माकर के जीवन की अनुभूति है[1] तो भी इसकी दिशानिर्देशिका पंडितराज जगन्नाथ की 'गंगालहरी' ही है, भले ही इसकी भावभूमि उनसे सर्वथा विलग एवं स्वानुभूति स्वतःसमुच्छित प्रेरणा पर है। पंडितराज जगन्नाथ की गंगालहरी ने लोकमानस को अपनी अवतारणा के समय से ही प्रभावित करना आरंभ किया है। साहित्यकार उससे अछूता न रहा और हिंदी में तो उसके अनेक अनुवाद प्रकाशित हुए[2]। पद्माकर को भी उसने दिशा का ज्ञान दिया, इसमें संदेह नहीं।

पंडितराज जगन्नाथ की गंगालहरी की ही भाँति हिंदी में अपने गुणधर्म के कारण गंगालहरी के अनेक संस्करण प्रकाशित हुए जिनमें मैंने निम्नांकित का दर्शन किया है--

१--दुर्गादत्त गौड़ द्वारा संपादित तथा लाइट प्रेस, बनारस द्वारा प्रकाशित (संवत् १९२२)।

२--मतबए अजीजी, शहर कानपुर में[3] रहमतुल्ला द्वारा छपवाई श्री गंगालहरी पद्माकारकृत (माघ कृष्ण ५, १९३६ वि०)।

३--श्री गंगाविष्णु श्री कृष्णदास, लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापाखाना, कल्याण, मुंबई (१९८० वि० शक १८४५)।

---

१. दे० पृष्ठ १५, १६, १९।

२. हिंदी में इनका अनुवाद है--
उजियारेलाल; रेवाराम (१८९६), महावीरप्रसाद द्विवेदी (१८९१), राजा लक्ष्मणसिंह, सत्यनारायण कविरत्न, पं० अंबाशंकर व्यास, अक्षयवट मिश्र, सेठ कन्हैयालाल पोद्दार आदि।

३. दे० पृ० १०।

४--श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित तथा रामरतन पुस्तकभवन द्वारा प्रकाशित (संवत् १९९१ वि० प्रथम तथा द्वितीय संस्करण, संवत् १९९३)।

५--श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित पद्माकर (ग्रंथावली) के अंतर्गत (२०२० वि०)

इनके अतिरिक्त इनके दो और संस्करण अभी अभी पटना से प्रकाशित होने की बात सुनी गई है और कुछ अन्यत्र से भी। यह गंगालहरी की जनप्रियता का प्रतीक है।

नागरीप्रचारिणी सभा की आकर ग्रंथमाला में प्रकाशित तथा पं विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित पद्माकर का पाठ सर्वाधिक प्रामाणिक एवं विस्तृत है। यद्यपि मूल में इन्होंने ५७ छंद दिए हैं तो भी संमेलनवाली हस्तलिखित प्रति में अनेक छंद और हैं। इनको उन्होंने बाद में मिलने के कारण संपादकीय में दे दिया है इस गंगालहरी में उनका क्रम ठीक कर कुल ६८ छंद दिए गए हैं।

गंगालहरी में कवित्त एवं दोहे में गंगा की वंदना पद्माकर ने की है। यह पद्माकर के जीवन के संध्याकाल की भक्तिपरक रचना है। इसके साहित्यिक सौंदर्य पर विचार करने के पूर्व पद्माकर के काव्य सौंदर्य का परिचय ज्ञात करना अप्रासंगिक न होगा।

रीतिकाल के अंतिम खेवे के कवियों में जनप्रियता तथा मूर्तिविधायिनी कल्पना की दृष्टि से पद्माकर अंतिम महान् कवि हुए तथा रीतिकाल की परंपरा के महान् निर्वाहक के रूप में भी उन्हें प्रतिष्ठित किया जा सकता है। रीतिकाल की प्रायः सभी विधाओं पर उन्होंने रचना की--अलंकारग्रंथ लिखा, नायक नायिका भेद लिखा, वीर प्रणाली के प्रशस्तिकाव्य लिखे, स्फुट रचनाएँ कीं, सामाजिक पर्वों एवं मेलों का चित्ताकर्षक वर्णन किया, समस्यापूर्तियों की सूक्तियाँ रचीं, अनुवाद किए, मुक्तक और प्रबंध रचे। किंतु यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इनके प्रबंध काव्य सामान्य कोटि के हैं। मुक्तकों में ही इन्होंने विशेष सफलता प्राप्त की।

सहज सजीव मूर्तिमयी कल्पना इनके मुक्तक पदों में सर्वत्र मिलती है पर अनुप्रास का व्यामोह कहीं कहीं उसे बादल की भाँति ढक लेता है। पर अनुप्रास के ही कारण कहीं कहीं इनकी रचनाओं में नादसौंदर्य का अति सुंदर दर्शन भी होता है। संस्कृत, प्राकृत एवं व्रजभाषा के ये परम सुजान पंडित

और मर्मज्ञ थे। इनका उनपर अधिकार भी था। इनकी भाषा में सुमधुर प्रवाह है, सटीक मुहावरे, एवं उक्तियाँ हैं और छंदविधान में सुंदर रचना-कौशल भी। इनकी भाषा विविध प्रभावकारिणी है। कहीं उनके सौष्ठव से रस, कहीं रूप और कहीं नाद मूर्तमंत होता है। इनके काव्य का विषय रीति परिपाटी मे प्रचलित शृंगार है। इसमें कहीं कहीं वे मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण भी कर बैठे हैं। जहाँ पर इनका कविहृदय अनुप्रासों के बीच संयत रूप से उमड़ पड़ा है, वहाँ निश्चय ही रचनाएँ अत्यंत उत्कृष्ट हो गई हैं। श्री रामचंद्र शुक्ल इन्हें सच्ची स्वाभाविक प्रेरणा का कवि मानते हैं तथा इनकी बड़ी भारी विशेषता में लाक्षणिकता को भी वे लेते हैं।

कुछ लोग इन्हे रीतिकाल का सर्वश्रेष्ठ कवि भी मानते हैं, पर वास्तव में इतना ही उनके लिये पर्याप्त होगा कि वे भाषा और कल्पना के धनी, अत्यंत सुंदर तथा उत्कृष्ट काव्यशिल्पी थे।

गंगालहरी ऐसे ही कवि की रचना है। उन्होंने जीवन में, सांसारिक सुख तथा सपदा का भोग चरम सीमा तक किया था, विलास के उपलब्ध सभी साधनों को जीवन के आवश्यक अग के रूप में स्वीकार किया था तथा उनका यश विस्तार भी अति व्यापक था। उन्हे बड़े बड़े राजा महाराजाओं का आश्रय प्राप्त था। पर अंत में अपमानित होना पड़ा कुष्ठरोग के कारण। आत्म संमान पर गिरनेवाले वज्र ने कवि मे ग्लानि और वैराग्य की चेतना जगा दी। सभी प्रकार के वैभव से दीप्त व्यक्ति ने सांसारिक लिप्सा का सार समझा। वह गंगा की शरण आया। ताप से मुक्त हुए और गंगा के प्रति कृतज्ञतायापन स्वरूप गंगालहरी मे उनकी प्रशस्ति के गान गाए।

साधारण राजाओं एवं सरदारों की प्रशस्ति करनेवाला अंत में यदि स्वतः असाधारण आलंबन ग्रहण कर अपनी अनुभूतियों को वाणी दे तो वह कितनी गरिमामयी होगी इसका दृष्टांत गंगालहरी है।

गंगालहरी से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि भयंकर कुष्ठ से पीड़ित था--

परो एक पतित पराउ तीर गंगा जू के
कुटिल कृतघ्नी कोटि कुंठित कुढंगी अंध।
कहै पदमाकर कहाँ मैं कौन वाकी दसा
कीट परिगे तन आवै महा गेदुरगंध॥

उनके पूर्ण कोढ़मुक्त होने की बात भी इस रचना में है--

'तीन पाप मेरे तेरे तीर पर मैया अब
मिलत न हेरे इत कित धौं हिराने हैं।
कचरे करार में बहे कै बीच धार में कै
बूड़े वै सेवार में कि वारु में बिलाने हैं।'

गंगा ने तो प्रत्यक्ष फल कवि को दिया। मुक्तिदायिनी के रूप में भी उनकी गरिमा भारतीय समाज में सहस्रों वर्षों से है। ऐसी दात्री देवी के प्रति श्रद्धानिवेदन में पद्माकर ने जो कुछ भी कहा है वह उनके अंतस् की वाणी है। इसीलिये उनकी महिमा उन्होंने सभी देवी देवताओं से बढ़कर तो बखानी ही, साथ ही उनका वर्णन पाप-तापनाशिनी-तीन लोक एवं चौदहों भुवन की परमश्रेष्ठ शक्ति के रूप में किया है और गंगा को कलिकल्मष विजयिनी अवढर उदार परमोज्वल एवं परम पावन चित्रित किया है। एक राजसी हृदय की भक्ति का जैसा उद्रेक इसमें दिखता है वैसा हिंदी में विरल ही है। गंगा के वर्णन में प्रायः सभी प्रसिद्ध पौराणिक गाथाएँ इस रचना में यथास्थान सुंदर ढंग से मंडित हैं। कवि ने व्याजस्तुति के सहारे गंगा का गौरव वर्णित किया है। व्याजस्तुति की कला में पद्माकर अपने क्षेत्र में अद्वितीय कवि हैं और उस कला का निखार इस रचना में है। अनुप्रासों की छटा एकाध स्थान को छोड़कर इसमें कहीं बोझिल नहीं हुई है। साहित्यिक सौंदर्य से युक्त अनुप्रास का एक उदाहरण देखना अप्रासंगिक न होगा--

कलित कपूर में न कीरति कुमोद में न
कुंद में न कास में कपास में न कंद में।
कहैं पद्माकर न हंस में न हाँस हूँ में
हिम में न हेरि हारो हीरन के वृंद में।
जेती छबि गंग की तरंगन में ताकियत
तेती छबि छीर में न छीरधि के छंद में।
चैत में न चैत चाँदनी हूँ में चमेली में न
चंदन में है न चंदचूड़ में न चंद में।।

अनुप्रास के साथ ही यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों की छटा भी इस रचना में हृदयमोहिनी है। मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ भी इसमें हैं। यथा--

जहाँ जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जाति गंगा
तहाँ तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है।
बेपरद बेदरद गजब गुनाहिन के
गंगा की गरब कीन्हें गरद गुनाह सब ।।

अपने इन गुणों के कारण यह रचना न केवल लोकसमादृत हुई अपितु परवर्ती साहित्य को भी इसने प्रभावित किया है। प्रायः सभी परवर्ती कवियों ने उन्हें ससंमान स्मरण किया तथा शृंगारिक रचनाओं के निर्माण में इनके गुण का प्रभाव ग्रहण किया। भक्तिपरक इनकी इस जीवंत रचना ने भी काव्यगंगा में नई हिलोर उठा दी।

इनकी गंगालहरी की अनुभूति पर ग्वाल ने यमुनालहरी तथा गंगालहरी और लछिराम ने सरयूलहरी का निर्माण किया। काली कवि ने गंगा-गुण-मंजरी की रचना की जिसके भाव-भाषा-छंदविधान सभी कुछ पद्माकर की गंगालहरी पर आश्रित हैं। स्फुट रूप में तब से अबतक बराबर गंगा के संबंध में रचनाएँ होती आ रही हैं। ब्रजभाषा में गोपालदास, भारतेंदु हरिश्चंद्र, सत्यनारायण कविरत्न, कविवर भानु, 'रत्नाकर', लाला भगवानदीन आदि ने उत्कृष्ट रचनाएँ की।

प्रबंध की दृष्टि में ब्रजभाषा में गंगा पर सर्वोत्कृष्ट रचना कविवर जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की कृति 'गंगावतरण' है। यह गंगालहरी से कम काव्यत्वपूर्ण रचना नहीं है। यह अपनी भावभूमि पर मौलिक भी है, पर इसकी प्रेरणादायिनी के रूप में गंगालहरी को मानना अनुचित न होगा।

खड़ी बोली के भी प्रायः सभी श्रेष्ठ युगविधायक कवियों, यथा श्री मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, जयशंकर 'प्रसाद' गोपालशरण सिंह, आदि ने गंगा का गौरवगान कर अपनी वाणी को पवित्र किया हैं। इस प्रकार गंगा सबंधी काव्य को हिंदी में विस्तार देने का श्रेय यदि गंगालहरी को दिया जाय तो अत्युक्ति न होगी।

पवित्रता और मुक्ति के प्रतीक के रूप में गंगा भारतीय मानस में सदा से प्रतिष्ठित रही हैं और गंगा के संबंध में सदा मानसशिल्पी रचना करते रहेंगे। वह युग और काल की सीमा से मुक्त मुक्ति की प्रतीक है और लोकमंगलकारिणी प्रेरणा की अजस्र साक्षात् चेतना भी। इसीलिये गंगालहरी की गरिमा भी हिंदी में स्थायी महत्व की है और रहेगी।

वाराणसी
१५ अगस्त, १९६३ ई०

सुधाकर पांडेय

गंगालहरी

(पद्माकरकृत)

ঠিকানা

([illegible])

गंगालहरी

(दोहा)

हरि हर विधि कों सुमिरि कै काटत कलुष कलेस।
कवि पदमाकर रचत हैं गंगा लहरी बेस ॥ १ ॥
× × × × हुतासन के
सु एक पाकसासन के आसन सम्हारे है।
एकै कमलासन के एकै गरुड़ासन के
एकै ब्रपभाषन के रूप कर डारे है ॥ २ ॥

कवित्त

बई ती विरंचि भई बामनपगन पर
फैलि फैलि फिरी ईस सीस पै सुगथ की।

१--हरि हर विधि = विष्णु, शंकर तथा ब्रह्मा। सुमिरिकै = स्मरण करके। कलुष = पाप। कलेस = क्लेश, कष्ट। बेस = वेश, रचना।

२--हुतासन = अग्नि। पाकसासन = इंद्र। कमलासन = ब्रह्मा। गरुड़ासन = विष्णु। ब्रषभासन = शंकर जी।

३--बईति = बोया था। विरंचि = ब्रह्मा। बामनपगन पर = भगवान वामन के चरणों पर, भगवान विष्णु ने वामन रूप धारण करके बलि से तीन पग भूमि की याचना की थी और जब विराट रूप धारण करके तीन पग में ही आकाश, पाताल तथा मृत्युलोक नाप लिया तो आकाश स्वर्गलोक में पहुँचते हुए उनके चरण को ब्रह्मा ने धो कर कमंडलु में रख लिया, वही जल गंगा के रूप में अवतरित हुआ। ईस सीस = भगवान शिव के सिर पर। सुगथ = भली

आइकै जहान जन्हुजंघा लपटाई फिरी
दीनन के दीन्हे दौरि कीन्हें तीनि पथ की
कहै पदमाकर सु महिमा कहाँ लौं कहौं
गंगा नाम पायो सही सबके अरथ की।
चारचो फल फली फूली गहगही बहबही
लहलही कीरतिलता है भगीरथ की ।। ३ ।।
कूरम पै कोल कोलहू पै सेष कुंडली है
कुंडली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै पदमाकर त्यों फन पै फबी है भूमि
भूमि पै फबी है थिति रजतपहार की।
रजत पहार पर संभु सुरनायक हैं
संभु पर जोति जटाजूट सु अपार की।
संभु जटाजूट पर चंद की छुटी है छटा
चंद की छटान पै छटा है गंगधार की ।। ४ ।।

भाँति गुथी हुई। जहान=मृत्युलोक। जह्नु जंघा = जह्नु की जाँघ में, जह्नु नाम के एक मुनि अपने यजमान का यज्ञ करा रहे थे। गंगा ने पर्वत से उतरते ही यज्ञ की सारी सामग्री अपनी धारा में बहा दी जिससे क्रुद्ध होकर जह्नु ने गंगा को पी डाला। भगीरथ की प्रार्थना पर उन्होंने जाँघ चीरकर गंगा को निकाल दिया। इसी से गंगा को 'जाह्नवी' कहते हैं। तीन पथ = तीन मार्ग से, आकाश मार्ग से जानेवाली गंगा' मंदाकिनी, मर्त्य मार्ग से जानेवाली गंगा 'भागीरथी' और पाताल मार्ग से जानेवाली गंगा 'भोगवती' के नाम से पुकारी जाती है। अरथ = कार्य, प्रयोजन। चार्यो फल = अर्थ, धर्म, काम मोक्ष। गहगही = हरे भरे पत्तों से लदी हुई। बहबही = फैली हुई। लहलही = लहराती हुई। कीरति लता = कीर्ति रूपी लता। भगीरथ = सूर्यवंशी राजा जिनके प्रयत्न से गंगा भूमि पर आई थी।

अलंकार-रूपक।

४—कूरम = कछुआ। कोल = सूअर। शेष कुंडली = शेष नाग की गेंडुरी। फबी = अच्छी लगती है। फन = फण। थिति = स्थिति। रजत पहार = चाँदी का पहाड़, कैलास। संभु = शिव। जोति = ज्योति, कांति। जटाजूट = लम्बे लम्बे बालों का समूह। छटा = शोभा। छटान = शोभा।

अलंकार-एकावली।

करम को मूल तन तनमूल जीव जग
जीवन को मूल अति आनँद उघरिबो ।
कहै पदमाकर सु आनँद को मूल राज
राजमूल केवल प्रजा को भौन भरिबो ।
प्रजामूल अन्न सब अन्नन को मूल मेघ
मेघन को मूल एक जन्न अनुसरिबो ।
जन्नन को मूल धन धनमूल धर्म अरु
धर्ममूल गंगाजलबिंदु पान करिबो ॥ ५ ॥

सहज सुभाइ आइ एक महापातकी की
गंगा मैया धोई तूँ तौ देह निज आप है ॥
कहै पदमाकर सु महिमा मही मैं भई
महादेव देवन मैं बाढ़ी थिर थाप है ।
जकि से रहे हैं जम थकि से रहे हैं दूत
दूनो दूनी पापन के उठि तन ताप है ।
बाँचि बही वाकी गति देखिकै विचित्र रहे
चित्र के से लिखे चित्रगुप्त चुपचाप है ॥ ६ ॥

५--करम = कर्म । तन = शरीर । आनँद उघरिबो = आनंद का उद्घाटन होना, आनंद प्राप्त होना । भौन = भवन, घर । भरिबो = भरना, पूर्ण करना । भौन भरिबो = घर भरना, धन धान्य से पूर्ण करना । मेघ = बादल । जन्न = यज्ञ । अनुसरिबो = अनुसरण करना । पान करिबो = पीना ।

अलंकार— कारणमाला ।

६—सहज सुभाइ = सरल भाव से । आइ = आकर । महापातकी = महापापी । निज आप = अपने आप, स्वयम् । बाढ़ी = बढ़ गई । थिर = स्थिर । थाप = स्थापना, गणना । जकिसे = स्तंभित से, चकित से । जम = यम, मृत्युदेवता । थकि से = हारे हुए थे, थकित । ताप = ज्वाला । बाँचि = पढ़कर । बही = लेखा जोखा लिखने की पुस्तिका । चित्र के से लिखे = चित्र में लिखे जैसे, जड़ से । चित्रगुप्त = यमराज के प्रधान अर्थलेखक, जो जीवमात्र के कर्मों का हिसाब रखते हैं ।

गंगा के चरित्र लखि भाषैं जमराज ऐसें
    एरे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै ।
कहै पदमाकर ये नरकनि मूँदि करि
    मूँदि दरवाजनि कों तजि यह थान दै ।
देख यह देवनदी कीन्हे सब देव यातें
    दूतन बुलाइकै बिदा के बेगि पान दै ।
फारि डारि फरद न राखि रोजनामा कहूँ
    खाता खति जान दै बही कों बहि जान दै ॥ ७ ॥

जाने जिन हैं न जज्ञ जोग जप जागरन
    जनम बितायो जग जोइन को जोइकै ।
कहै पदमाकर सुदेवन के सेवन तें
    दूरि रहे दूरमति बेदरद होइकै ।
कुटिल कुराही कूर कलही कलंकी कलि-
    काल की कथान में रहे जे मति मोइकै ।
तेऊ बिस्नु अंगन में बैठे सुरसंगन में
    गंग की तरंगन में अंगन कों धोइकै ॥ ८ ॥

७—चरित्र लखि = कार्यप्रणाली को देखकर। भाषैं = कहते हैं । हुकुम = आदेश। कान दै = ध्यान दो। मूँदि करि = बंद करके। थान = स्थान। देवनदी = देवताओं की नदी, गंगा। यातें = इसलिये। बेगि = शीघ्र ही। बिदा के पान दै = विदा कर दो, विदा करते समय पान देने की प्रथा है। फरद = फर्द, एक प्रकार की लेखा वही। रोजनामा = रोजनामचा। खाता = एक प्रकार की वही। खति जान दै = हिसाब किताब बराबर हो जाने दो।

८—जिन = जिन्होंने। जोग = योग। जागरन = जागरण, किसी साधना में रात भर जागना। जोइन = स्त्रियों को। जोइकै = देखकर। सुदेवन = देवताओं के। दूरमति = दुर्मति, दुष्ट बुद्धि। बेदरद = क्रूर। कुटिल = दुष्ट हृदय का। कुराही = कुमार्गी। कूर = क्रूर, निष्ठुर। कलही = झगड़ालू। मति = बुद्धि। मोइकै = लीन करके। अंगन = आँगन। तरंगन = लहरों। अंगन कों = अंगों को।

जैसे तैं न मोकों कहूँ नेकहूँ डरात हुतो
ऐसो अब तोकों हौंहूँ नेकहूँ न डरिहौं।
कहै पदमाकर प्रचंड जो परैगो तौ
उमंडि करि तोसों भुजदंड ठोंकि लरिहौं।
चलो चल चलो चल विचल न बीच ही तें
कीच बीच नीच तो कुटुंब कों कचरिहौं।
एरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि
गंगा की कछार में पछार छार करिहौं॥९॥

पायो जिन तेरी धौरी धारा में धसत पात
तिनको न होत सुरपुर तें निपात है।
कहै पदमाकर तिहारो नाम जाके मुख
ताके मुख अंमृत को पुंज सरसात है।
तेरो तोय छ्वै करि छुवत तन जाको बात
तिनकी चले न जमलोकन में बात है।
जहाँ जहाँ भैया धूरि तेरी उड़ि जाति गंगा
तहाँ तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है॥१०॥

जमपुर द्वारे लगे तिनमें किवारे कोऊ
हैं न रखवारे ऐसे बनिके उजारे हैं।
कहै पदमाकर तिहारे प्रन धारे तेऊ
करि अघ भारे सुरलोक कों सिधारे हैं।

९—नेकहूँ = थोड़ा भी। डरात हुतो = डरते थे। मोकों = मुझको। प्रचंड परैगो = कड़ा पड़ोगे। उमंडि करि = उत्साहित होकर। विचल न = हटो मत। कीच = कीचड़। तो = तव, तुम्हारे। कुटुंब = परिवार। कचरिहौं = कुचल दूँगा। दगादार = धोखा देनेवाले। पातक = पाप। कछार = नदी का वह किनारा जहाँ बाढ़ का पानी फैल जाता है। पछार = पटककर। छार = धूल।

१०—धौरी धारा = उज्ज्वल धारा। सुरपुर = स्वर्ग। निपात = गिरना। पुंज = समूह। तोय = जल। बात = वायु। बात न चले = चरचा भी नहीं होती। धूरि उड़ि जात है = नष्ट हो जाता है।

११—बनिके = अच्छी तरह। उजारे हैं = उजाड़ दिया है। अघ = पाप।

सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति
　　　　पतितकतारे भवसिंधु तें उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हैं गंगा तुम तारे और
　　　　जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं ॥११॥

सुचित गुबिंद ह्वैकै सेवते कहाँ धौं जाइ
　　　　जलजंतु पति जरि जैबे कौं अखिल ती।
कहै पदमाकर सु जादा कहाँ कौन अब
　　　　जाती मरजादा ह्वै मही की अनमिलती।
जल थल अंतरिच्छ पावते क्यों पापी मुक्ति
　　　　मुनिजन जापकन जो वा दुरमिल ती।
सूखि जातो सिंधु बड़वानल की झारन सौं
　　　　जौ न गंगाधार ह्वै हजार धार मिलती ॥१२॥

बिधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्ध यही
　　　　हरिपदपंकजप्रताप की नहर है।
कहै पदमाकर गिरीससीसमंडल के
　　　　मुंडन की माल ततकाल अघहर है।
भूपित भगीरथ के रथ की सुपुन्य पथ
　　　　जन्हु जप जोग फल फैल की फहर है।

भारे = महान्। सिधारे हैं = गए हैं। सुजन = सज्जन। पतितकतारे=पापियों की पंक्ति। भवसिंधु = संसाररूपी समुद्र। तारे = तारा, उद्धार किया। तारे = तारिकाएं।

अलंकार--यमक।

१२--सुचित = निश्चित। गुबिंद = विष्णु भगवान्। जलजंतुपंति = जलजंतुओं का समूह। अखिल = संपूर्ण। जादा = ज्यादा, अधिक। मरजादा=मर्यादा। अनमीलती = अनमिल, उलट पुलट। अंतरिच्छ = अंतरिक्ष। दुरमिल = दुष्प्राप्य। झारन = लपटों। बड़वानल = समुद्र में पाई जानेवाली आग।

१३--सिद्धि = अलौकिक विभूति। गिरीस = हिमालय, भगवान शिव। अघहर = पाप को दूर करनेवाली। सुपुन्य = अत्यंत पवित्र। पथ = मार्ग, लीक।

छेम की छहर गंगा रावरी लहर
कलिकाल कों कहर जमजाल कों जहर है ॥१३॥

हौं तौ पंचभूत तजिबे कों तक्यो तोहि पर
तैं तो कर्‌यो मोंहि भलो भूतन को पति है।
कहै पदमाकर सु एक तन तारिबें में
कीन्हें तन ग्यारह कहौ या कौन गति है।
मेरे भाग यही लिखि भागीरथी गंगे तुम्हें
कहिये कछू जौ तौ कितेक मेरी मति है।
एक भवसूल आयो मेटन कौं तेरे कूल
तोहि तौ त्रिसूल देत बार न लगति है ॥१४॥

भाषा होति भूषित सु पूरी अभिलाषा होति
साखा होति सुजसलतान की सुगति है।
कहै पदमाकर त्यौं बदन बिसाल होत
हाल होत हेरि छलछिद्रन की छति है।
गंगाजू तिहारो गुनगान करैं अजगैव
आनि होति बरषा सु आनँद की अति है।
पूर होत पुन्यन को धूर होत अधरम
चूर होत चिंता दूर होत दुरमति है ॥१५॥

फैल = फैलाव, विस्तार। छेम = कल्याण, मंगल। छहर = छिटकाव। रावरी = आपकी। कहर = विपत्ति।

अलंकार---उल्लेख।

१४---हौं = मैं। पंचभूत = क्षिति, जल, अग्नि, वायु, आकाश से युक्त शरीर। तक्यो = देखा। भूतन को पति = भगवान शिव। तन ग्यारह = ग्यारह शरीर (रुद्र ग्यारह माने जाते हैं)। गति = मुक्ति। भवसूल = सांसारिक पीड़ा। त्रिसूल = त्रिशूल, तीन पीड़ाएँ। बार = देर।

अलंकार---व्याजस्तुति।

१५---भाषा = वाणी। वदनं = मुख। हाल = शीघ्र ही। हेरि = देखकर। छलछिद्रन = कपट आदि दोषों। छति = क्षति, विनाश। अजगैव = अचानक, एकाएक। अति = अत्यंत। पूर = बाढ़, प्रवाह। धूर होत = नष्ट हो जाता है। दुरमति = कुबुद्धि, अज्ञान।

तुम तो सहज इत तारि देतीं गंगे उत
वाको तेज फैल जात धाम धाम धाम सो।
पद्माकर कहै देवि ताके दरबार दौर
और देव देषत तमासो तजि काम सो।
छोड़ि निज मंदिर पुरंदर पर्यौ है पाइ
गरै पर्यो आइ सेसनाग केसदाम सो।
चेरा सो चतुर चतुरानन षड़ो है
षानाजाद सो षड़ानन गजानन गुलाम सो ॥१६॥

सूधरो जो होतो माँगि लेतो और दूजो कहूँ
जातो बनि खेती करि खातो एक हर की
ये तौ पदमाकर न मानत हैं नाथि चलें
भूतन के साथ है गिरैयाँ अजगर की।
मैं तौ याहि छोड़ौं पै न मोकों यह छोड़त है
फेरि लै री फेरि व्याधि आपने बगर की।
सैल पै चढ़त गहि ऊरध की गैल गंगा
कैसो बैल दीन्हों जो न गैल गहै घर की ॥१७॥

जोग जप जागै छाँड़ि जाहु न परागै भैया
मेरी कही आँखिन के आगे तहाँ आवैगी।
कहै पदमाकर न ऐहै काम सरस्वती
साँचहू कलिंदी कान करन न पावैगी।

१६—सहज = सरलता से। इत = इधर। उत = उधर। देषत = देखते हैं। पुरंदर = इंद्र। पाइ = पैर। केसदाम = जटा। चेरा = दास। चतुरानन = ब्रह्मा। षानाजाद (खानाजाद) = घर में पला हुआ सेवक। षडानन = स्वामि-कार्तिकेय। गजानन = गणेश।

१७—सूधरो = सीधा, सरल। दूजा = दूसरा। हर = हल। नाथि = नाक छेदकर, उसमें रस्सी लगा करके। गिरैयाँ = गले की रस्सी। अजगर = सर्प। फेरिलै = लौटा लो। बगर = घर। व्याधि = कष्ट। गहि = पकड़ कर। ऊरध = ऊपर। गैल = मार्ग।

१८—जागै = याग, यज्ञ। परागै = प्रयाग, तीर्थराज। सरस्वती = त्रिवेणी में मिलनेवाली एक नदी जो अब लुप्त है। कलिंदी = यमुना। कान करना = ध्यान

लैहै छीनि अंबर दिगंबर कै जोरावरी
बैल पै चढ़ाइ फेरि सैल पै चढ़ावैगी।
मुंडन के माल की भुजंगन के जाल की
सु गंगा गजखाल की खिलत पहिरावैगी ॥१८॥

लोचन असम अंग भसम चिता की लाइ
तीनों लोक नायक सी कैसे कै ठहरतो।
कहै पदमाकर बिलोकि इमि ढग जाके
वेदहू पुरान गान कैसें अनुसरतो।
बाँधे जटाजूट बैठि परबतकूट माँहि
महाकालकूट कहौ कैसें कंठ करतो।
पीवै नित भंगै रहै प्रेतन के संगै ऐसे
पूछतो को नंगै जौ न गंगै सीस धरतो ॥१६॥

पापन की पाँति भाँति भाँति बिललाति परी
जम की जमाति हलकंपन हिलति है।
कहै पदमाकर हमेस दिबिबीथिन
बिमानन की रेल ठेल ठेलनि ठिलति है।

देना। अंबर=वस्त्र। दिगंबर=नग्न। जोरावरी=जबरदस्ती। गजखाल= हाथी का चमड़ा। खिलत=संमान रूप में दिया गया परिधान।

१६—असम=विषम, तीन। भसम=भस्म। चिता=लकड़ियों की ढेर जिसपर मुर्दा जलाया जाता है, श्मशान। नायक=स्वामी। परबतकूट=पहाड़ की चोटी। महाकालकूट=महाविष, यह विष समुद्रमंथन के समय समुद्र से निकला था, जिसे शंकर जी ने अपने गले में धारण कर लिया था। भंगै= भाँग। नंगै=नंगा, शिव जी।

२०—बिललाति=बिलखती है, रोती है। पाँति=पंक्ति। भाँति भाँति= तरह तरह से। जमाति=झुंड, गिरोह। हलकंपन=हड़कंप, घबराहट। हिलति है=काँपती है। हमेस=हमेशा, सर्वदा। दिबिबीथिन=स्वर्ग की गलियों में। बिमानन=आकाश मार्ग से जानेवाला देवताओं का रथ। रेल ठेल=

सुरधुनि रावरे उधारे जगजीवन की
छिनछिन सेन सिवलोक कों झिलति है।
आसन आघ देत देत निसिबासर
बिचारे पाकसासन कों साँस न मिलति है ॥२०॥
सबन के बीच मीचसमै महानीचमुख
गंगा मैया तेरे आजु रेनुकन ह्वै गए।
कहै पदमाकर दसा यों सुनी ताकी वाकी
छबि की छटान सों जो छितिछोर छ्वै गए।
दूत दबकाने चित्रगुप्तहू चकाने औं
जकाने जमजाल पापपुंज लुंज ल्वै गए।
चारिमुख चारिभुज चाहि चाहि रहे ताहि
पंचन के देखत ही पंचमुख ह्वै गए ॥२१॥
करिहौं गुबिंद तोंब परिहौं पगन तरें
याही तें गुबिंद रूप दीबे को डरति है।
रचिहौं बिरंचि ताब बसिहौं कमंडलु में
याही तें बिरंचि रचना न हो धरति है।
सोति जानि सारदै न देत रूप वाको पुनि
पदमाकर कहै पापपुंजनि हरति है।
तेरी रीझ जानी हम एरी देवि गंगा तोहि
नंगा धर्‌यो सीस यातें नंगा तू करति है ॥२२॥

भरमार। ठेलनि = धक्कामुक्की। सुरधुनि = गंगा। उधारे = उद्धार किए गए। छिन छिन = क्षण-क्षण। सेन = सेना। झिलति है = प्रवेश करती है। अरघ = अर्घ्य। पाकसासन = इंद्र। साँस न मिलना = छुट्टी न मिलना।

२१—मीचसमै = मृत्यु के समय। रेनुकन = रेणुकण, धूल के कण। ताकी = उसकी। वाकी = उसकी। छटान = दीप्ति, प्रकाश। छिति = क्षिति, पृथ्वी। छोर = किनारा। दबकानें = भयभीत हो गए। चकाने = चकित हो गए। जकाने = हक्का बक्का हो गए। लुंज = पंगु। ल्वै गए = हो गए। चारिमुख = ब्रह्मा। चारिभुज = विष्णु। चाहि रहे = देखते रह गए। पंचन = लोगों। पंचमुख = शंकर जी।

२२—गुबिंद—कृष्ण, विष्णु। बिरंचि = ब्रह्मा। सौति = सपत्नी। रीझ = पसंद। नंगा = नग्न रहनेवाले, शिव।

कलि के कलंकी कूर कुटिल कुराही केते
तरि गे तुरंत तबै लीन्हीं रेनुराह जब।
कहै पदमाकर प्रयास बिन पाइ सिद्धि
मानत न कोऊ जमदूतन की दाह दब।
कागद करम करतूति के उठाइ धरे
पचि पचि पेंच में परे हैं प्रेतनाह अब।
बेपरद बेदरद गजब गुनाहिन के
गंगा की गरद कीन्हें गरद गुनाह सब ॥२३॥

रेनुका की रासन में कीच कुस कासन में
निकट निवासन में आसन लदाऊ के।
कहै पदमाकर तहाँई मंजु मूरन में
धौरी धौरी धूरन में पूर में प्रभाऊ के।
बारन में पारन में देखहु दरारन में
नाचति है मुकुति अधीन सब काऊ के।
कूल औ' कछारन में गंगाजलधारन में
मझरा मझारन में झारन में झाऊ के ॥२४॥

२३—रेनुराह = गंगा के धूलकण से भरा मार्ग। प्रयास = प्रयत्न। दाह = जलन। दब = दबाव भय। करम करतूति = भाग्य तथा कर्तव्य। कागद = लेखा जोखा। पचिपचि = हैरान हो हो कर। पेंच में = चक्कर में। प्रेतनाह = प्रेतनाथ, यमराज। बेपरद = निर्लज्ज। गजब = अत्यंत। गुनाहिन = पापियों। गरद = धूल। गरद कीन्हे = नष्ट कर दिया। गुनाह = पाप।

अलंकार—अनुप्रास।

२४—रेनुका = रेणुका, बालू। रासन = राशि, ढेरी। कुस = कुश, एक प्रकार की घास। कासन = नदियों के किनारे उगनेवाली एक प्रकार की घास। लदाऊ = भराव वाले। निवासन = रहने की जगहों। मूरन = जड़ों। बारन पारन = इस उस दोनों किनारों। दरारन = फटी हुई भूमि। मुकुति = मुक्ति। कूल = किनारा। मझरा = नदी के बीच दिखाई पड़नेवाली रेती। मझार = मध्य, बीच। झारन = झाड़ियों। झाऊ = नदियों की रेती में उगनेवाला एक पौधा।

अलंकार—उल्लेख।

तेरे तीर जौ लौं एक लहर निहारियत
तौ लौं कैयो लछ्छ सूछ्छ लहरन धारती।
कहै पदमाकर चहौं जौ बरदान, तौ लौं
कैयो बरदानन के गान अनुसारती।
जौ लौं लगौं काहू सों कहैई कला कला एक
तौ लौं कैयो कला के समूहन सम्हारती।
जौ लौं एक तारे को हौं रचत कवित्त गंगे
तौ लौं तुम कैयक करोर तारि डारती॥२५॥

गंगाजू तिहारे तीर आछैं पदमाकर सु
देखी पातकी की एक अद्‌भुत मुकति है।
आइकै गुबिंद बाँह धरिकै गरुड़जू पै
आपनेई लोक जाइबे की कीन्ही मति है।
जौ लौं चलिबे कों भए गाफिल गुबिंद तौ लौं
चोरि चतुरानन चलाई हंसगति है।
जौ लौं चतुरानन चितैबैं चहूँ ओर तौ लौं
बृष पै चढ़ाइ लै गयोई बृषपति है॥२६॥

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइबे कों
तासों कहै कोऊ एक अधम सयान में।
जाउ न पथिक उत बिपति बिसेषि होति
मिलैगो महान कालकूल खान पान में।

२५--निहारियत = देखते हैं। लछ्छ--लक्ष, लाख। सूछ्छ = सूक्ष्म। अनुसारती = कह देती है। कला = शोभा, छटा। तारे = तारे हुए। कैयक = कई करोर = करोड़।

२६--आछे = अच्छे, उत्तम। मुकति = मुक्ति। गुबिंद = विष्णु। गरुड़ = एक पक्षी विशेष, जो विष्णु का वाहन है। मति कीन्ही = विचार किया। गाफिल = असावधान। चोरि = चुपके से। चितैबै = देखें। वृष = वैल। वृषपति = शंकरजी।

२७--जात हुतो = जाता था। अधम = नीच, पापी। उत = वहाँ, गंगा के

कहै पदमाकर भुजंगनि बँधैंगे अंग
संग मैं सुभारी भूत चलैंगे मसान में।
कमर कसैंगे गजखाल ततकाल बिन
अंबर फिरैंगो तू दिगंबर दिसान में ॥२७॥

कैधौं तिहूँ लोक की सिंगार की विसाल माला
कैधौं जगी जग में जमाति तीरथन की।
कहै पदमाकर बिराजै सुरसिंधु धार
कैधौं दूधधार कामधेनुन के थन की।
भूपति भगीरथ के जस की जलूस कैधौं
प्रगटी तपस्या पूरी कैधौं जन्हुजन की।
कैधौं कछू राखै राकापति सों इलाका भारी
भूमि की सलाका पै पताका पुन्यगन की ॥२८॥

जम को न जोर जब पापिन पै चल्यो तब
हाथ जोरि गंगाजू सों चुगली करैं खरे।
बड़न पै ढरो पै न ढरो देवि तुछ्छन पै
कहैं पदमाकर सुनावत हरे हरे।
बड़न पै ढरे बड़ी पाइयै बड़ाई देखौ
ईस पै ढरी तौ तुम्हैं ईस सीस पै धरे।

किनारे। विशेषि = विशेष। भुजंगनि = साँपों। भूत = प्रेत, शिव के गण। अंबर = वस्त्र। दिगंबर = नग्न।

अलंकार = व्याजस्तुति।

२८—कैधौं = या, अथवा। सिंगार = शृंगार। जगी = प्रकाशित हुई। जमाति = समूह। बिराजै = सुशोभित होती है। सुरसिंधु-धार = क्षीरसागर की धारा। कामधेनु = एक प्रकार की स्वर्गलोक की गाय, जो अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थों को देनेवाली होती है। थन = स्तन। जलूस = उत्सव यात्रा। जन्हुजन = जह्नु ऋषि की। राकापति = चंद्रमा। इलाका = संबंध। सलाका = दंड।

अलंकार = संदेह।

२९—जोर = काबू, वश। चुगली = परोक्ष में की जानेवाली निंदा। ढरो = द्रवित होओ, कृपा करो। तुछ्छन = तुच्छों, नीचों। ईस = शंकर जी।

तुच्छन कों देती जैसो नारायणरूप तैसो
तुच्छ तुम्हें तुच्छ करि पाइन तरे करे ॥२९॥

अधम अजान एक चढ़िकै विमान भाख्यो
बूझत हौं गंगा तोहि पारि परि पाइ हौं।
कहै पदमाकर कृपा करि बतावै साँची
देखे अति अदभुत रावरे सुभाइ हौं।
तेरे गुनगान ही की महिमा महान मैया
कान कान नाइकै जहान मध्य छाइहौं।
एक मुख गाए ताके पंचमुख पाए अब
पंचमुख गाइहौं तो केते मुख पाइहौं ॥३०॥

पापन की पाँति महामंद मुख मैली भई
दीपति दुचंद फैली धरम समाज की।
कहै पदमाकर त्यों रोगन की राह परी
दाह परी दुखन में गाज अति गाज की।
जा दिन तें भूमि में भगीरथ ने आनी जग
जानी गंगधारा या अपारा सब काज की।
ता दिन तें ज्यानी सी बिकानी सी दिखानी
बिललानी सी बिलानी राजधानी जमराज की ॥३१॥

पाइन तरे करे = पैरों के नीचे करता है। शिव गंगा को सिर पर धारण करते हैं। विष्णु उन्हें अपने पैरों में स्थान देते हैं।

३०—अजान = अज्ञान। बूझत हौं = पूछता हूँ। पाइ परि = पैरों पर गिर कर। साँची = सत्य। सुभाइ = स्वभाव। कान कान नाइकै = कानों कानों में डालकर, सबको सुनाकर। जहान = दुनिया।

पद्माकर जी ने इस पद्य को अपने 'जगद्विनाद' नामक ग्रंथ में अद्भुत रस के उदाहरण के रूप में दिया है।

३१—दीपति = दीप्ति, कांति। दुचंद = दुगुनी। राहपरी = लूट पड़ी। रोगन की राहपरी = रोग लुट गए, नष्ट हो गए। दाह = जलन। गाज = बिजली। गाज = गर्जन। आनी = लाई। ज्यानी सी = क्षतिग्रस्त सी। बिकानी सी = बिकी हुई सी। बिललानी सी = रोती हुई सी। बिलानी = नष्ट हो गई।

जम के जसूस बिंती जम सों हमेस करैं
तेरी ठाकुरी को ठीक नेकु न निहारो है।
बड़े बडे पापी औ सुरापी दुजतापी तहूँ
चलन न पावै कहूँ हुकम हमारो है।
कहै पदमाकर सुब्रह्मलोक बिस्नुलोक
नाम लैकै कोऊ सिवलोक कों सिधारो है।
बैठी सीस नंगा के तरंगा है अभंगा ऐसी
गंगा ने उठाइ दीन्हो अमल तिहारो है ॥३२॥

बिन जप जज्ञ दान तीछन तपस्या ध्यान
चाहत हौ जौ पै तिहूँ लोक में महाउदोत।
कहै पदमाकर सुनौ तौ हाल हामी भरौ
लिखौ कहौ लैकै कहूँ कागद कलम दोत।
गंगाजू के नाम सुनें हामी भरें लिखें कहें
ऐसे बढ़ि जात कछू पुन्यन के पूरे गोत।
सौगुने सुने तें औ हजारगुने हामी भरें
लाखगुने लिखत करोरिगुने कहें होत ॥३३॥

परो एक पतित पराउ तीर गंगाजू के
कुटिल कृतघ्नी कोढ़ी कुंठित कुढंगी अंध।
कहै पदमाकर कहौं मैं कौन वाकी दसा
कीट परि गए तन आवै महा दुरगंध।

३२--जसूस=जासूस, गुप्तचर। बिंती = विनती, प्रार्थना। ठाकुरी=ठकुराई; स्वामित्व। सुरापी = शराबी। दुजतापी = द्विजतापी, ब्राह्मणों को कष्ट देनेवाले। तहूँ = वहाँ भी। नंगा = शिव। तरंगा = लहरोंवाली। अभंगा = अटूट। अमल = शासन, राज्य।

३३--तीछन = तीक्ष्ण। महाउदोत = महान उन्नति। हाल = कथा (गंगा की)। हामी भरौ = हुँकारी भरो। दोत = दावात। गोत = परिवार, समूह।

३४--पराउ = पड़ाव। कीट = कीड़ा। लूटिगे = लूट गए, नष्ट हो गए।

पाप हाल छूटि गे सु लूटि गे विपत्ति जाल
टूटि गे तड़ाक दे सुनाम लेत भवबंध।
गंग कहें गनेसबेस दौरि गही बाँह अरु
गा के कहें गरुड़ चढ़ाइ लीन्हो निज कंध ॥३४॥

सरदघटा सी खासी उठती अटा सी
दुपटा सी छिति छीरधि छटा सी निरधारियै।
छज्जा सी छुटी सी छारद्वारी सी छटी सी गढ़
मढ़ सी मढ़ी सी औं गढ़ी के ढार ढारियै।
कहै पदमाकर सु धौरी धौरी दौरी आवै
चौरी चौरी अंचल सुचारु चिन्हवारियै।
छहरैं छबीली नई नई न्यारी न्यारी नित
लहरैं निहारि प्यारी गंगाजू तिहारियै ॥३५॥

विघन बिनासै भवपासै देत रासै भासै
रासै पुन्यपुंज कों प्रकासै रंगरंगा के।
सुख की समाजै उपराजै साजै छाजै छिति
घन से गराजै राजै सीस ईस गंगा के।

हाल = तुरंत। भवबंध = सांसारिक बंधन। गनेसबेस = गणेशवेशधारी, गजानन। अरु = और।

३५--सरदघटा = शरद ऋतु के बादल। खासी = पूरी, ठीक ठीक। अटा = ढेर, राशि। दुपटा = दुपट्टा, कंधे पर रखे जानेवाला वस्त्र। छिति = पृथ्वी पर। छीरधिछटा = क्षीरसागर की शोभा। छज्जा = छाजन या छत का वह भाग जो दीवार के बाहर निकला रहता है, ओलती। छारद्वारी = चहारदीवारी। मढ़ = मठ। मढ़ी = मढ़ी। गढ़ी = छोटा किला। ढार = मार्ग, पथ। धौरी = उज्वल। चौरी = चौड़ी। सुचारु = अत्यंत सुंदर। चिन्हवारियै = चिह्नोंवाली। छहरैं = छिटकाव।

अलंकार--मालोपमा।

३६--विघन = विघ्न। बिनासै = नष्ट करती है। रंग रंगा = तरह तरह के। उपराजै = उत्पन्न करती है। गराजै = गरजती है। सुजानै = ज्ञानी ही। तानै =

कहै पदमाकर सुजानै करि जानै जानै
तानै मनमानै भोग आनै देव अंगा के।
सुंदर सुभंगा नित अमित अभंगा आछे
अघ ओघ भंगा ये तरंगा देवि गंगा के ॥३६॥

तहाँ आइ भूमि तें लगाइ आसमानहूँ लौं
जानि गीरवान औ बिमानन के जुरे थोक।
कहै पदमाकर जो कोऊ नर जैसे तैसे
तन देत गंगा तीर तजिकै महान सोक।
सो तौ देत ब्याधैं बिष दुखन दिनाई देत
पावन के पुंज के पहारन कों ठीक ठोक।
दगा देत दूतन चुनौती चित्रगुप्त देत
जम को जरब देत पापी लेत सिवलोक ॥३७॥

सुखद सुहाई मन भाई मुनि देवन की
निखिल निकाई रूप बेदन में गाई है।
कहै पदमाकर कहाँ लौं साधुताई कहौं
सब ही पै एक सी दवाई बगराई है।
पुन्यताई धारत उधारत अधमताई
नाक ठकुराई की ठसक ठहराई है।

विस्तार करती है। आनै = लाती है। देवअंगा = देवताओं संबंधी। सुभंगा = सुंदर अंगोंवाली। अमित = असीम। अभंगा = अटूट। आछे = उत्तम। अघओघ = पापसमूह। भंगा = नष्ट करने वाली। तरंगा = लहरें।

३७—तें = से। लगाइ = लेकर। लौं = तक। गीरवान = गीर्वाण, देवता। जुरे = इकट्ठे हुए। थोक = समूह, झुंड। सोक = शोक, दुख। ब्याधैं = व्याधि, रोग। दुखन = दुखों को। दिनाई देत = खुजली देती है, व्याकुल कर देती है। पहारन को ठीक ठोंक = पहाड़ों के सिर डाल देता है अर्थात् पहाड़ों पर खदेड़ देता है। दगा = धोखा। चुनौती = ललकार। जरब = दुख, चोट।

३८—सुहाई = सुंदर। मनभाई = मन को अच्छी लगानेवाली। निखिल = सम्पूर्ण। निकाई = सुंदरता। साधुताई = सरलता, सज्जनता। दयाई = दया ही। बगराई = फैलाइ। पुन्यताई = पुण्यभाव। अधमताई = पाप भाव। नाक = स्वर्ग।

जहाँ जहाँ जम की जमाति कीन्ह करामाति
तहाँ तहाँ फिरै देबि गंगा की दुहाई है ॥३८॥

गंगाजू के नीर तीर छोड़े है सरीर जिन
तेऊ गने जात पुन्यवंतन की धुरै है।
कहै पदमाकर त्यों तिनकी जलूसैं लखि
गीरवान सकल सराहैं जुर जुर हैं।
सारथी गुविंद दीपदानवारे भानु होत
पंखावारे भारे पाकसासन से सुर हैं।
खौंखारे बरुन तमोरवारे तारापति
चौंखारे चारु चतुरानन चतुर हैं ॥३९॥

एक महापातकी सुगात की दशा विलोकि
देत यों उराहनो सु आठहू पहर है।
मीच समैं तेरो उत आप गयो कंठ इत
व्याप गयो कंठ कालकूट सो जहर है।
आप चढ़ी सीस यह कसबीसी दीन्ह
औ हजार सीसवारे की लगाई अटहर है।
मोहिं करि नंगा अंगअंगनि भुजंगा बाँधे
एरी मेरी गंगा तेरी अद्भुत लहर है ॥४०॥

ठकुराई = स्वामित्व। ठसक = ऐंठ, अभिमान। करामाति = चमत्कार, अद्भत प्यार। दुहाई = मुनादी, घोषणा।

३९--नीरतीर = जल के किनारे। तेऊ = वह भी। पुन्यवंतन = पुण्यात्माओं। धुर = आधार, श्रेष्ठ। जलूसैं = उत्सव यात्रा। गीरवान = देवता। जुरजुर = इकट्ठे हो होकर। सारथी = रथ हांकनेवाले। दीपदानवारे = मसाल दिखानेवाले। भानु = सूर्य। पंखावारे = पंखा झलनेवाले। पाकसासन = इन्द्र। सुर = देवता। खौंखारे = चंदन लगाने वाले। बरुन = वरुण देवता। तमोरवारे = पान देनेवाले। तारापति = चन्द्रमा। चौंरवारे = चँवर डलानेवाले। चतुरानन = ब्रह्मा।

४०--सूगात = स्वगात, अपना शरीर। उराहनो = उलाहना। मीचसमैं = मृत्यु के समय। कंठ = किनारे। व्याप गयो = फैल गया। अटहर = पगड़ी। हजार सीसवारे = शेषनाग।

अलंकार--व्याजस्तुति।

सिद्धिन को सार भो निसार भो असिद्धिन को
बुद्धि को भंडार भो त्रिताप को उतार भो।
कहै पद्माकर प्रचार भो प्रभावन को
जस उजिग्रार भो सु आनँद अपार भो।
जा दिन तें आनी है भगीरथ ने भागीरथी
तब तें खुलासा सुद्ध सुरपुर द्वार भो।
पार भो सगरवंस पुन्य को पसार भो
सु छार भो दुरित जमनगर उजार भो ।।४१।।
कीजत फिराद सुध लीजिए हमारी गंगा
साखन के साथी दुख दिग्गज डिगाए तूं।
कहै पदमाकर जु जानत न कोऊ हुतो
तौन जस जगा जगा जग उमगाए तूँ ।
छोड़ि छोड़ि मन तन सोए ते गरीब जेते
तेते पूरे पूरे पुन्यपटल जगाए तूँ ।
आयो हुतो हौं तौ कछु लीबे कौं तिहारे पास
जनम के जोरे मेरे पातक भगाए तूं।।४२।।
मुनिमन माने सनमाने सारदादि वृंद
नारदादि जाने जे बखाने बेदबानी के ।
आप अबिनासी हैं बिनासी दुखजालन के
पुन्य के प्रकासी प्रनपूरक सु प्रानी के।

४१--त्रिताप = दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट। उतार = ह्रास। सुरपुर= स्वर्ग। सगरबंस = सगर के साठ हजार पुत्र। पसार = प्रसार, विस्तार। छार= राख। दुरित = पाप। जमनगर = यमपुरी, नरक। उजार = उजाड़।

४२--फिराद = फरियाद, विनती। साखन = धाक, मर्यादा। दुखदिग्गज= दुःख रूपी बड़े बड़े हाथियों को। हुतो = था। तौन = उस। उमगाए = उमंगित किया। पुन्यपटल = पुण्यसमूह। जनम के जोरे = जन्मभर में जोड़े हुए; एकत्र किए हुए।

अलंकार = व्याजस्तुति।

४३--मुनि मनमाने = मुनियों का मन मान गया, संतुष्ट हो गया। सारदादि = सरस्वती आदि। प्रकासी = प्रकाशित करनेवाले। प्रनपूरक=प्रण को

कहै पदमाकर सु पापतमपूषन हैं
दूषनरहित भवभूषन महानी के।
ध्यावौ अब ध्यावौ लोक पावौ देवदेवन के
गावौ अरे गावौ गुन गंगा महारानी के ।।४३।।

लाइ भूमिलोक तें जसूस जवरई जाइ
जाहिर खबर करी पापिन के मित्र की।
कहै पदमाकर बिलोकि, जम कही कै
बिचारौ तौ करमगति ऐसे अपवित्र की।
जौ लौं लगे कागद बिचारन कछुक तौ लौं
ताके कान परी धुनि गंगा के चरित्र की।
वाके सीस ही तें ऐसी गंगाधारा बही जामैं
बही बही फिरी बही चित्रहू गुपित्र की ।।४४।।

सुरसरि मैया एक पातकी पुकार्यो तोहि
ऐसो दिव्य दीन्हो तपतेज वाहि तैंनै है।
कहै पदमाकर स्वलोक तिहि आगे रखि
करत प्रनाम सुरवृंद सब नै नै है।
व्याकुल बिलोकि वह बोल्यो देवि देवन सों
कोउ न डराहु तुम्हें और कछु दैनै है
इंद्र सों कहत सोंहि लैनै है न इंद्रलोक
संभुलोक लैनै कै गुबिंद लोक लैनै है ।।४५।।

पूरा करनेवाले। प्रानी = प्राणी। पापतम पूषन = पाप रूपी अंधकार के सूर्य। महानी = बड़ी।

४४--जसूस = जासूस, गुप्त बातों का पता लगानेवाला। जवरई = जबरदस्ती। बिचारौ = विचार करो। करमगति = कर्तव्यों का लेखा जोखा। कछुक = थोड़ा सा। बही = बह निकली। बही बही फिरी = बह गई। बही = लेखा पुस्तिका।

४५--सुरसरि = गंगा। दिव्य = दिव्य, उत्तम। वाहि = उसको। तैंने = तुमने। नै नै = झुक झुक कर।

हेरि हेरि हंसत न चाहत हरषि चढ़्यो
बैलहू बिलोकि मन वाकी ओर ढरको।
कहै पदमाकर सु देखिकै गरुडहू कों
लेखि निज भाग अनुराग कै न सरको।
कापै चढ़ौं कौन तजौं चाहत सबन यह
सोचत पतित पर्‌यो गंगातीर पर को।
जौ लौं घरी द्वैक रूप हर को न पायो तौ लौं
पातकी विचारो भयो चोर भरे घर को ॥४६॥

वाको जस कितहूँ न जाग्यो परतच्छ पर
याको धाम धाम फैलि फैलि रह्यो जस है।
वाको सुन्यो एक देवलोक में दरस होत
याको तो दिखात तिहूँ लोक में दरस है।
कहै पदमाकर सुदान वह माँगे देत
ये तौ बिन माँगे सबैं देत सरबस है।
आछो अभिराम करैं पूरन सकल काम
गंगा जू को नाम कामतरु तें सरस है ॥४७॥

४६—हेरि हेरि = देख देख कर। ढरको = ढुलक गया, आकर्षित हो गया। लेखि निज भाग = अपने भाग्य को देखकर। अनुराग कै = प्रेम करके भी। न सरको = नहीं खिसका, उसकी ओर नहीं चला। हर = शिव। घरी द्वैक = दो एक घड़ी। भरे घर को चोर = भरे हुए घर का चोर, वस्तुओं से भरे हुए घर में चोर रात भर सोचता ही रह जाता है कि क्या लूं क्या न लूं और इसी में सवेरा हो जाता है, कुछ नहीं चुरा पाता।

४७—वाको = उसका। न जाग्यो = प्रसिद्ध न हुआ। परतच्छ = प्रत्यक्ष। दरस = दर्शन। सरबस = सर्वस्व। आछो = अच्छा, उत्तम। अभिराम = सुंदर। काम = कामनाओं, अभिलाषाओं। कामतरु = कल्पवृक्ष। सरस = बढ़कर।

अलंकार = व्यतिरेक।

सारमाला सत्य की बिचारमाला बेदन की।
भारी भागमाला है भगीरथ नरेस की।
तपमाला जन्हु की सु जपमाला जोगिन की
आछी अपमाला या अनादि ब्रह्म बेस की।
कहै पदमाकर प्रमानमाला पुन्यन की
गंगाजू की धार धनमाला है धनेस की।
ज्ञानमाला गुरु की गुमानमाला ज्ञानिन की
ध्यानमाला ध्रू की मौलिमाला है महेश की।।३८।।

ज्ञानन में ध्यानन में निगम निदानन में
मिलत न क्योंहूँ हरि ही में ध्याइयतु है।
कहैं पदमाकर न तच्छन प्रतच्छ होत
अच्छन के आगेहू अधिच्छ गाइयतु है।
इंदिरा के मंदिर में सुनिए अनंद भरे
बीधे भवफंद तहाँ कैसे जाइयतु है।
देवन के बृंद में न पैयै छीरसिंधु में
सु गंगाजलबिंद में गुबिंद पाइयतु है।।४९।।

४८——सारमाला = तत्व की माला। भागमाला = भाग्य की माला। अपमाला = जल माला, जल ही आदि तत्व माना जाता है। प्रमान = प्रमाण। धनेस = कुबेर। गुमान = गर्व, अभिमान। ध्रू = ध्रुव, यह उत्तानपाद के लड़के थे और अपनी विमाता से अपमानित होकर अपनी माता के आदेश से भगवान् का अटल ध्यान किया था जिससे इन्हें अटल पद प्राप्त हुआ था। मौलिमाला = मुंडमाला। महेस = शिव।

अलंकार = उल्लेख।

४९——निगम = वेद। निदानन = निरूपण। ही = हृदय। तच्छन = तत्क्षण। प्रतच्छ = प्रत्यक्ष। अच्छन = आँखों के। अधिच्छ = भगवान्, ब्रह्म। इंदिरा = लक्ष्मी। सुनिए = सुना जाता है। बीधे = उलझे हुए, फंसे हुए। भवफंद = सांसारिक बंधन। बृंद = समूह।

देषहु दरद सब गरद मिलाप करि
फरद रही है फैल आनद बहाली की।
कहै पदमाकर सु सिद्धिन की पानि नौऊ-
निधि की निधान षुली पान है षुसाली की।
भागीरथी भगीरथजस की जगी है जोति
जगमग होति आदि जोति बनमाली की।
पुन्यन की पाँति जह्नु जप की जमाति
भूम्र भूषन की भाँति करामाति या कपाली की ॥५०॥

ओरन को वंचि परयौ झूठे परपंच पंच
देवन में एको न अराध्यो हिये धरि है।
कहै पद्‌माकर न दोष दुष जात कह्यो
रह्यो तन कलि के कलंकन सौं भरि है।
ऐसो और देषत न दूजो दयावंत कोउ
अब जो अनंत मेरे अघओघ हरि है।
रहत धरो सो है भरोसो मोहि गंगा
भवसागर के पार या तिहारी धारि करि है ॥५१॥

ताहि को प्रभाव लोक लोक ओक ओक फैलो
ताकी कृपा चाहैं देवतानि को निकर है।
पद्‌माकर कहै जोई गंगा और साम्हू भयो
हेरो नेकु जाइ अरु न्हायौ हरबर है।

५०—दरद = कष्ट। गरद मिलाय करि = धूल में मिलाकर; नष्ट करके। फरद = अनुपम, बेजोड़। बहाली = पुनर्नियुक्ति। नौऊनिधि = नवोनिधि—पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और खर्व। षुसाली = खुशहाली, प्रसन्नता। निधान = खजाना। भूम्र = पृथ्वी। करामाति = चमत्कार। कपाली = शिव।

५१—वंचि परयो = धोखे में पड़ा हुआ। अराध्यो = आराधना किया। दयावंत = दयालु। अघ ओघ = पाप समूह।

५२—ओक ओक = घर घर। निकर = समूह, वृंद। हरबर = जल्दी, शीघ्रता।

यामें कहा जात साम्हू होउ हेरु न्हाउ जाइ
काहे कौ फिरत भूलो भूलो घर घर है।
साम्हू होत होत चंद्रचूड चिन्हं चारु अरु
हेरैं मिलै नादिया हनाये होत हर है ॥५२॥
नीर के निकट रेनुरंजित लसैं यों तट
एकपट चादर की चाँदनी बिछाई सी।
कहै पदमाकर त्यों करत कलोल लोक
आवरत पूरे सारमंडल की पाई सी।
बिसद बिहंगन की बानी राग राचती सी
नाचती तरंगै ऐन आनँद बधाई सी।
अघ की अँधेरी कहूँ रहत न पाई फिरै
धाई धाई गंगाधार सरद जुन्हाई सी ॥५३॥
काम अरु क्रोध लोभ मोह मद मातसर्ज
इनकी जँजीरन कों जारिहै पै जारिहै।
कहै पदमाकर पसारि पुन्य चारौ ओर
चारौ फल धामन ये धारिहै पै धारिहै।
छोभ छल छंदन कों बाढ़े पापबृंदन कों
फिकिर के फंदन कों फारि है पै फारिहै।
एक बार बारि जिन गंगा को पियो है
तिन्हें तारनी तरंगिनी ये तारिहै पै तारिहै ॥५४॥

साम्हू = सामुहें, सन्मुख। हेरु = देखो। न्हाउ = स्नान करो। चंद्रचूड = शिव। चारु = सुंदर। हेरे = देखने पर। नादिया = नंदी बैल, शिव का वाहन। हनाये = स्नान करने पर।

५३—रेनुरंजित = बालू के कणों से सुशोभित। तट = किनारे का भाग। कलोल = आनन्द। लोक = लोग, जनसमूह। आबरत = आवर्त, घेरा। विसद = अधिक। विहंगन = पक्षियों की। राग राचती = गीत गाती है। ऐन = बिल्कुल ठीक। अघ = पाप। अँधेरी = कालिमा, अंधकार। जुन्हाई = चाँदनी।

५४—मद = अहंकार। मातसर्ज = मात्सर्य, ईर्ष्या। जंजीरन = बंधन। छोभ = क्षोभ। छंदन = कपटाचरणों। फिकिर = शोक। वारि = पानी। तारनी = तारन करने वाली। तरंगिनी = नदी, गंगा।

मुंडन की माल दीबो भाल पर ज्वाल कीबो
छीन लीबो अंबर अडंबर जहाँ जैसो।
कहै पदमाकर त्यों बैल पै चढ़ाइबो
उढ़ाइबो पुरानी गजखाल को भलो तैसो।
नंगा करि डारिबो सुभंगा भखि भारिबो
सुभंगा दुख मानिये बूझे तें कछू वैसो।
साँपनि सिंगारिबो गरे में विष पारिबो
सु तारिबो जु ऐसो तो बिगारिबो कहो कैसो ।।५५।।

सूधे भए जे हैं नर गंगा के अन्हाइबे कों
कामी बदनामी बामी कैयक करोर हैं।
कहै पदमाकर त्यों तिनकी अवाइन के
माचि रहे जोर सुरलोकन में सोर हैं।
बाट बाट हाट सी लगाए फिरैं घाट घाट
बाट हेरैं नीर में कबै धौं तन बोर हैं।
एक ओर गरुड़ सुहंस एक ओर ठाढ़े
एक ओर नाँदिया बिमान एक औरहैं ।।५६।।

५५--दीबो = देना। ज्वाल कीबो = ज्वाला करना, तीसरा नेत्र बना देना, शिव के तीसरे नेत्र में ज्वाला रहती है। अडंबर = आडंबर समान। सुभंगा = भाँग। बूझे = पूछने से। सिंगारिबो = शृंगार करना। गरे = गले। पारिबो = डालना। विगारिबो = बिगाड़ना।

अलंकार--व्याजस्तुति।

५६--सूधे = सज्जन, पुण्यशील। कामी = विषयी। बामी = कुपथगामी: कैयक = कई। अवाइन = आगमन। माचि रहे = मचा हुआ है। बाट बाट = रास्ते रास्ते। हाट = बाजार। गरुड़ = विष्णु वाहन, विष्णुलोक ले जाने के लिये। सुहंस = ब्रह्मा का वाहन, ब्रह्मलोक ले जाने के लिये। नाँदिया = नंदी, शिवजी का वाहन, शिवलोक ले जाने के लिये। विमान = देवताओं का वाहन, देवलोक ले जाने के लिये।

आस करि आयो हुतो मैया पास रावरे मैं
गाठहू के खास दुख दूरि बुटि बुटि गे।
कहै पदमाकर कुरोग में सँघाती तेऊ
गैल में चलत घूमि घूमि घुटि घुटि गे।
दगादार दोष दीह दारिद बिलाइ गए
फिकिर के फंद बिन छोरे छूटि छूटि गे।
जौ लौं आऊँ आऊँ तेरे तीर पर गंगे तौलौं
बीच ही में मेरे पापपुंज लुटि लुटि गे॥५७॥

हिम के हिमालय के छीरहू के छीरधि के
छिन मैं लिये है छीन छबि उदोत है।
चंदे चमकाय दे चुनौती ऐसी चाँदनी कौं
पद्माकर कहै फैले सुरसरि सोत है।
यातैं अकुलाइ मंद मारुत लगत कुंद
एला बेला मालती के मुकुलित गोत है।
सिरन कँपाइ कहै सब सो सदाहीं हम
नाहीं हम नाहीं हम नाहीं तुल्य होत है॥५८॥

भूमिलोक भुवलोंक स्वर्गलोक महर्लोक
जनलोक तपलोक सत्यलोक थल मैं।
कहै पदमाकर अतल मैं बितल मैं
सुतल मैं रसातल मैं मंजु महातल मैं।

५७--आस करि = आशा करके। गाँठहूके = अपने पास के। बुटि बुटि गे = पिस गए, दूर हो गए। सँघाती = साथी। गैल = रास्ते में। घूमि घूमि = मूर्च्छा खा खा कर। घुटि घुटि गे = मर गए। दगादार = धोखा देनेवाले। दीह = दीर्घ। बिलाइ = नष्ट हो जाना। फिकिर = शोक।

अलंकार—व्याजस्तुति।

५८---हिम = बर्फ। छीरहू = क्षीर, दूध। छीरधि = क्षीर सागर। छिनमैं = क्षण मात्र में। सुरसरि सोत = गंगा की धारा। मारुत = वायु। कुंद = जूही की तरह का एक श्वेत पुष्प। एला = इलायची। मुकुलित = प्रफुल्लित। गोत = समूह। सिरन कँपाइ = सिर हिला हिला कर।

त्यौं ही तलातल में पताल मैं अचल चल
जेते जीव जंतु बसैं भारात सकल मैं।
बीच मैं न बिलमैं बिराजैं बिस्नुथल मैं
सु गंगाजू के जल में अन्हाए एक पल मैं।।५६।।

छीन होत छल के छरा है छोह छलके सु
पातक पटल के पहार गिरि गल के।
कहै पद्माकर अकल के सकल के
प्रभाव बेस बल के सुधन्य धरातल के।
आवत सुफल के अपार पुंज ललके
सुपुन्य झलाझल के झपाक झला झलके।
दाह दोष दल के मिटे है थल थल के
रहे न मल कलि के बिलोके गगाजल के।।६०।।

एक अति अधम त्रिवेनी तीर देष्यौ ताहि
तीनहूँ जननि आइ दरसन दीन्हों है।
पद्माकर कहै चलि आगे जन्हुजा जो लगी
करन चुराइ जटाजूट चंद्र चीन्हो है।
सुरसुति कहै गंगा तेरे करे कहा होत
हौं तौ री विरंचि रचिवे को व्रत लीन्हो है।
आपुस में जौलौं दोनौं चरचा मचावै
तौलौं इंदीवर सुंदर कलिंदी कान्ह कीन्हो है।।६१।।

५६—भूमिलोक = ऊपर के सातलोक । अतल = नीचे के सातलोक अर्थात लोकों में। अचल चल = अचर और सचर । न बिलमैं = रुकते नहीं है । बिस्नु-थल = विष्णुलोक ।

६०—छल के छरा = छल की छड़ी । छोह = माया, ममता । अकल = अंग रहित। सकल = अंग सहित । बेस = वेष, भेस । पातक पटल = पापों का समूह । झलाझल = चमाचम । झपाक = एका एक । झला = झड़ी, चमक ।

६१—तीनहूँ जननि = तीनों माताएँ—गंगा, यमुना, सरस्वती । जह्नुजा = गंगा । सुरसुति = सरस्वती । इंदीवर = नीलकमल । कलिंदी = कालिंदी, यमुना ।

जनम जनम जिन छोर्‌यो तो न मेरो संग
अंग, अंग नित ही रहे जे लपटाने हैं।
कहै पदमाकर तिहारियै सौं गंगा जौन
जप के जतन तें न नेकु अकुलाने, हैं।
तीन पाप मेरे तेरे तीर पर मैया अब
मिलत न हेरे इत कित धौं हिराने हैं।
कचरे करार में बहे कै बीच धार में कै
बूड़े वै सेवार में कि बारू में बिलाने हैं ॥६२॥

जोगहू में भोग में वियोग में सँजोगहू में
रोगहू में रस में न नैको बिसराइये।
कहै पदमाकर पुरी में पुन्यसैलन में
फैलन में फैल फैल गैलन में गाइये।
वैरिन में बंधु में बिथा में बेस बालन में
बन में बिषै में रनहू में जहाँ जाइये।
सोचहूँ में सुख में सुरी में सहिबी में कहूँ
गंगा गंगा गंगा कहि जनम बिताइये ॥६३॥

कलित कपूर में न कीरति कुमोद में न
कुंद में न कास में कपास में न कंद में।
कहै पदमाकर न हंस में न हासहू में
हिम में न हेरि हारो हीरन के बृंद में।

६२—तो = था। जप के जतन = जप के प्रयत्न पर भी। कचरे = कुचल गए। करार = नदी का वह ऊंचा किनारा जो जल के काटने से बन जाता है। बारू = बालू। कितधौं = कहाँ।

अलंकार–सन्देह।

६३—सँजोगहू = संयोग। रस = आनंद में। पुरी = स्वर्ग आदि पुण्य नगरी में। पुन्यसैलन = पुण्यपर्वतों, कैलासादि। फैलन = विस्तृत स्थान। गैलन = गलियों में। बेसबालन = वेश्याबालाओं, वेश्याओं। बिषै = विषय। सुरी = देवत्व प्राप्त होने पर।

६४—कलित = सुंदर। कीरति–कुमोद = कीर्तिरूपी कुमुदनी। कुंद = एक

जेती छवि गंग की तरंगन में ताकियत
तेती छवि छीर में न छीरधि के छंद में।
चैत में न चैत चाँदनी हूँ में चमेली में न
चंदन में है न चंदचूड़ में न चंद में ॥६४॥

भारी सो भुजंग भागीरथी के सुतीर पर्यो
ताहि लखि खाइबे कों तरछत पार भो।
कहै पदमाकर चतुर्भुज को रूप भयो
बड़े बड़े पापनिहूँ ताप को तिसार भो।
नारद बिसारदहू सारद सराहैं
भले इंद्र जम बरुन कुबेर परिवार भो।
गंगा के प्रभाव लखि मुकुति मजा की मंजु
सोई अहि गरुड़ के कंध पै सवार भो ॥६५॥

दोहा

गिरिस गजानन गिरि सुता, ध्याइ समुझि श्रुति पंथ।
कवि पद्माकर ही कियो, गंगालहरी ग्रंथ ॥६६॥
गंगालहरी जो सुजन, कहै सुनै श्रुतिसार;
ताको गंगा देति हैं, सदा सुभग फलचार ॥६७॥

प्रकार का श्वेत पुष्प। हिम = वर्फ। ताकियत = दिखाई पड़ती हैं। छीर = क्षीर। चंदचूड़ = शंकर जी।

अलंकार—व्यतिरेक।

६५—भागीरथी = गंगा। सुतीर = किनारे। खाइबे को = खाने के लिये, गरुड़ को खाने के लिये उद्यत देखकर। तरछत = पानी के नीचे नीचे। ताप को तिसार = ताप को भी अतिसार (ग्रहणी का रोग) हो गया अर्थात् ताप नष्ट हो गए। मजाकी = आनन्ददायिनी। अहि = सर्प।

६६—गिरिस = गिरीश, शंकर जी।। गजानन = गणेश जी। गिरिसुता = पार्वती जी। श्रुतिपंथ = वेदमार्ग।

६७—सुजन = सज्जन। श्रुतिसार = वेदों का तत्व। सुभग = सुंदर। फलचार = चार फल—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष।

परिशिष्ट (३)

महाराज जगत सिंह को दिया गया आत्मपरिचय

भट्ट तिलंगाने को बुंदेलखंड बासी कवि,
सुजस प्रकासी 'पदमाकर' सुनामा हौं।
जोरत कबित्त, छंद छप्पय अनेक भांति,
संस्कृत प्राकृत पढ़े जु गुनग्रामा हौं॥
हय रथ पालकी गयन्द गृह ग्राम चारु,
आखर लगाय लेत लाख न की सामा हौं।
मेरे जान मेरे तुम कान्ह हौ जगतसिंह,
तेरे जान तेरो वह विप्र हौं सुदामा हौं॥ १॥

रघुनाथ राव की प्रशस्ति में रचित कवि की प्रथम रचना

संपति सुमेर की कुबेर की जो पावै, ताहि
तुरत लुटावत बिलंब उर धारे, ना।
कहै 'पदमाकर' सुहेममय हाथिन के,
हलके हजारन के बितरि बिचारे ना॥
गंज-गज-बकस महीप रघुनाथ राव,
याही गज धोखे कहूँ काहू देइ डारे ना।
याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही
गिरि तें, गरे तें, निज गोद तें उतारे ना॥ २॥

दौलत राव सिंधिया की प्रशस्ति में रचित

मीनागढ़ बंबई सुमंद कवि- मंदराज,
बंदर को बंद करि बंदर बसावै गो।
कहै 'पदमाकर' कटा कै कासमीर हू को,
पिंजर सों घेरि कै कलिंजर छुडावैगो॥

बांका नृप दौलत अलीजा महाराज कबौं,
साजिदल दपटि फिरंगिनि दबावै गो।
दिल्ली दहपट्टि पटना हू को झपट्टि करि,
कबहुंक लत्ता कलकत्ता को उड़ावै गो।॥ ३ ॥

रघुनाथ राव की तलवार की प्रशस्ति में रचित

दाहन तें दूनी तेज तिगुनी त्रिसूलन तें,
चिल्लिन तें चौगुनी चलाक चक्र–चाली तें।
कहै 'पदमाकर' महीप रघुनाथ राव,
ऐसी समसेर सेर सत्रुन पै घाली तैं॥
पंचगुनी पव्व तें पचीसगुनी पावक तें,
प्रगट पचासगुनी प्रलय प्रनाली तें।
साठगुनी सेस तें सहस्रगुनी साँपन तें,
लाख गुनी लूक तें करोरगुनी काली तें॥ ४ ॥

महाराज प्रताप सिंह की मृत्यु पर रचित

गाउँ-गज-बाजि दै दराज कविराजन,
पटेल दै पराभव, फतूहन फलै गये।
कहै 'पदमाकर' अभै दै राज-रैयत को,
मंत्रिन को मंत्र दै न काहू सो छलै गये॥
साहिब सवाई सुख संपति समाज साज,
जगत नरिंदै निज नंद दै भलै गये।
बास बयकुंठ करिबे को श्रीप्रताप,
पाकसासन कै आसन पै पाँव दै चलै गये॥ ५ ॥

पद्माकर का जुलूस देख बाँदा के लोग उन्हें आक्रमणकारी राजा समझ बैठे उस भ्रम भंजन के निमित्त रचित

सूरत के साह कहै कोऊ नर नाह कहै,
कोऊ कहै मालिक ये मुलुक दराज के।
राव कहै कोऊ उमराव पुनि कोऊ कहै,
कोऊ कहै साहिब ये सुखद समाज के॥

देखि असबाब मेरो भरमैं नरिन्द सबै,
तिनसों कहे मैं बैन सून्य सिरताज के।
नाम 'पदमाकर' डराउ मत कोऊ भैया
हम कविराज हैं प्रताप महाराज के ॥६॥

महाराज जगतसिंह की प्रशस्ति में रचित

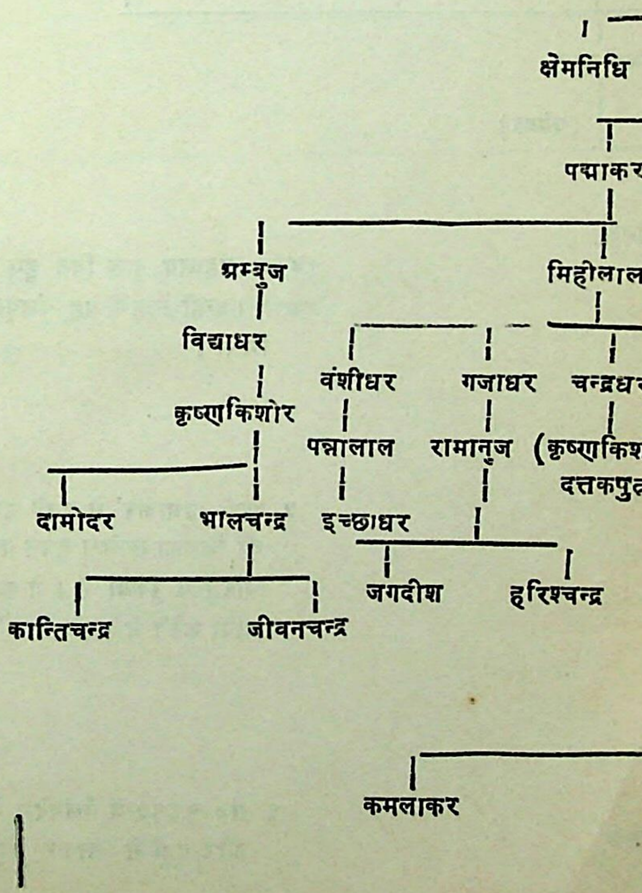
प्रबल प्रताप कुल दीपक छता के पुन्य,
पालक पिता के राम राजा ज्यों भगतराज।
कान्ह-अवतार बैरी-बारिधि-मथन-काज,
सील के जहाज बली बिक्रम तखतराज ॥
म्लेच्छ अंधकार मेटिबे को मारतंड दिन,
दूलह दुनी के हिंदू-जन के नखतराज।
पारथ-से पृथु-से परीछित पुरंदर-से,
जादौ-से जजाति-से जनक-से जगतराज ॥
आप जगदीस्वर ह्वै जग में बिराजमान,
हौं हूँ तौ कबीस्वर ह्वै राजतै रहत हौं।
कहै 'पदमाकर' ज्यों जोरत सुजस आप,
हौं हूँ त्यों तिहारो जस जोरि उमहत हौं ॥
श्री जगतसिंह महाराज मान सिंहावत,
बात यह साँची कछू काँची ना कहत हौं।
आप ज्यों चहत मेरी कविता दराज,
त्यों मैं उमिरिदराज राज! रावरी चहत हौं ॥७॥

चरखारी नरेश द्वारा अपमानित होने पर रचित

तुम गढ़ किल्ला सदा जोर करि जीतत हो,
पिंगल अमरकोष जीतत जहाज हैं।
तुम सदा साम दाम दण्ड भेद न्याव करो,
चारों वेद हमहूँ सुनावत समाज हैं ॥
हाथी घोड़े रथ ऊँट पैदल तुम्हारे साथ,
राखत सदा ही हम छप्पै छंद साज हैं।
तुम सौं औ हम सौं बराबरि को दावा गिनौ,
तुम महाराज हौ तो हम कविराज हैं ॥ ८ ॥

परिशिष्ट २—

श्री भालचंद्र कवीश्वर तैलंग बी. ए. एल. टी. का
'महाकवि पद्माकर' शीर्षक निबंध से
[माधुरी, फरवरी सन् १९३४, पृ० सं० ७९]



परिशिष्ट १–

हिम्मत बहादुर विरदावली से

पद्माकर का वंशवृक्ष

----:०:----

१ दामोदर | २ इच्छाधर | ३ हरीकृष्ण | ० | ३ अंबाधर | गिरधर | ० | ०

४ कृष्णकिशोर उ. ना. कृपाकर | पन्ना लाल | रामानुज | युगुल | ५ प्रभाकर | युगलकिशोर | गौरी शंकर

विद्याधर | वंशीधर | गदाधर | चंद्रधर | लक्ष्मी धर

अंवाप्रसाद उ. ना. अंबुज (कनिष्ठ) | मिहीलाल (ज्येष्ठ)

प्यारेलाल (उपनाम पद्माकर)

मोहनलाल

जनार्दन

श्रीगोविंद

मोहन

गंगाराम

६ मधुकर भट्ट मूलपुरुष

१ यह लड़का कुछ दिन तक हमसे उर्दू पढ़ता रहा है। सं० १९६१ में इसकी उम्र लगभग १० वर्ष के थी।

२ ये महाशय जयपुर में रहते हैं।

३ ये महाशय दतिया में रहते हैं।

४ ये महाशय कुछ दिन हुए छत्रपुर में रहे थे। इन्हीं से हमें यह वंशवृक्ष और कविता मिली।

५ इन्हीं 'प्रभाकर' से हमने उपर्युक्त बातें पूछी थीं जिनका उल्लेख हमने पद्माकर के जीवन-चरित में किया है। ये कभी कभी छत्रपुर आया करते थे।

६ सं० १६१५ में तैलंगदेश से मध्यदेश में आए और वहां से चलकर मथुरा में स्थित हुए।

परिशिष्ट २—

श्री भालचंद्र कवीश्वर तैलंग बी. ए. एल. टी. का
'महाकवि पद्माकर' शीर्षक निबंध से
[माधुरी, फरवरी सन् १९३४, पृ० सं० ७९]

पद्माकर कवि का वंशवृक्ष

